आपस्तम्बस्मृतिः

(देवदत्तकृपा हिन्दी भाष्य सहित)

प्रयागनारायण मिश्र

आपस्तम्ब-स्मृतिः

('देवदत्त-कृपा' हिन्दी-टीकाऽन्विता)

सम्पादक तथा टीकाकार

डॉ० प्रयागनारायण मिश्र

(एम०ए०, पी-एच्०डी०, साहित्याचार्य)

अतिथि प्रवक्ता (गेस्ट लेक्चरर)

संस्कृत तथा प्राकृतभाषा-विभाग

लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ

ज्ञानभारती पब्लिकेशन

दिल्ली-110007

प्रथम संस्करण : 2005

मूल्य : 150.00

ज्ञानभारती पब्लिकेशन
(प्राच्यविद्या-प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता)
29/5, शक्तिनगर
दिल्ली-110007
दूरभाष : 27451485, 22912722

लेज़र टाइप सैटिंग :
क्रियेटिव ग्राफिक्स, दिल्ली

मुद्रक : **तरुण ऑफसेट, दिल्ली**

ĀPASTAMBA SMṚTIḤ

(with Devadatta-Kṛpā Hindi Commentary)

Editor & Commentator

DR. PRAYAG NARAYAN MISHRA

GYAN BHARATI PUBLICATION

DELHI-110007

First Edition : 2005

Price : 150.00

Gyan Bharati Publication
(Oriental Publishers & Booksellers)
29/5, Shakti Nagar
Delhi-110007
Ph. : (O) 27451485 (R) 22912722

Laser Type Setting :
Creative Graphics
Delhi

Printed at : **Tarun Offset, Delhi**

मातृपितृपादपङ्केरुहेभ्यः सादरं समर्पणम्

मङ्गलाचरणम्

सारदां शारदां देवीमापस्तम्बमृषिं विभुम्।
पितरौ सादरं नत्वा गुरुदेवं मनीषिणम्।।
आपस्तम्बस्मृतिट्टीका हिन्दीभाषा-समन्विता।
'देवदत्तकृपा'-नाम्ना मयाऽधुना प्रणीयते।।
प्रणीय सादरं भाष्यं पितृभ्यामर्प्यते मुदा।
ययोरुत्सङ्गमाश्रित्य जीवनं सफलं सदा।।

—प्रयागनारायणेन



आत्म-निवेदन

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् इत्यादि ऋषिप्रणीत वचनों में वेदों को जिस धर्म का मूल प्रतिपादित किया गया है उसी धर्म के सर्वाङ्गीण विवेचन के उद्देश्य से प्रोक्त धर्मशास्त्र की एक सुदीर्घ-व्यापक एवं अक्षुण्ण परम्परा प्राप्त होती है। **श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः**' इत्यादि श्लोकों से वेदपर्यायत्वेन लोकविश्रुत श्रुति शब्द की भाँति स्मृति शब्द को धर्मशास्त्रत्वेन स्वीकार करने की परम्परा प्रतिष्ठित है। मौलिक रूप से बीज रूप में वेदों में निहित प्रस्तुत शास्त्र के आद्य प्रणयन के रूप को धर्मसूत्र-सञ्ज्ञक कल्पवेदान्त का अस्तित्व सर्वथा सिद्ध होने पर भी स्मृति-परम्परा के प्राचीन अस्तित्व को तैत्तिरीय आरण्यक (१.२) में सुरक्षित देखा जा सकता है।

स्मृति शब्द का प्रयोग श्रुति अर्थात् वेद के ईश्वर-प्रकाशित ऋषिदृष्ट वाङ्मय से भिन्न ऋषि-प्रणीत साहित्य के रूप में देखा जा सकता है। धर्मशास्त्रीय परम्परा में धर्म के उपादानों के रूप में जिन आयामों की गणना की गयी है उनमें श्रुति के साथ-साथ स्मृति को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। लोकप्रचलन में भी श्रुति-स्मृति के रूप में सर्वत्र श्रुति के साथ-साथ स्मृति का ही सङ्कीर्तन किया जाता है। मौलिक रूप से श्रुति की अनुवर्तिनी होकर भी स्मृति की अपनी विशिष्ट रचना-शैली एवं सर्वजनबोधिता है। सुहृत्-सम्मित शैली, भावबोध-सामर्थ्य तथा लालित्यपूर्ण प्राञ्जल भाषा में प्रोक्त स्मृति-ग्रन्थ प्रारम्भ में अत्यल्प मात्रा में ही थे क्योंकि प्राचीन धर्मसूत्रों में प्रायः मनु के अतिरिक्त अन्य स्मृतिकारों के नामोल्लेख मात्र ही प्राप्त होते हैं। मनु की व्यापक आद्य परम्परा सर्वजनविदित ही है। वस्तुतः विश्वसनीय स्मृतियाँ कई युगों के प्रणयन हैं। सम्प्रति स्मृति-ग्रन्थों की एक ऐसी सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होती है जिसे सौकर्य की दृष्टि से आचार्यों ने स्मृति, मुख्यस्मृति तथा उपस्मृति सञ्ज्ञक त्रिविध वर्गों में विभाजित करके स्मृतियों की संख्या शतार्द्धाधिक

स्वीकार की है। अष्टादशस्मृति तथा द्वादशस्मृति संग्रह के रूप में प्रकाशित दोनों संस्करण इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

वीरमित्रोदय में उद्धृत प्रयोगपारिजात मे मुख्यस्मृति-कारों के रूप में जिन अष्टादश आचार्यों के नाम सङ्कीर्तन किये गये हैं उनमें मनु आदि आचार्यों के साथ आचार्य आपस्तम्ब का नाम भी ग्रहण किया गया है। उपर्युक्त स्मृतिसंग्रह के दोनों संस्करणों में आपस्तम्बस्मृति का सानुवाद प्रकाशन है।

स्मृतिग्रन्थों में 'आपस्तम्बस्मृति' के नाम से प्रकाशित प्रस्तुत स्मृति की ओर ध्यानाकर्षण का मुख्य श्रेय आपस्तम्ब-सूत्र-साहित्यानुशीलन के विशिष्ट आलोक में प्रवर्तमान उत्तर-पी-एच्० डी० शोधकार्य को अधिष्ठित होता है। आपस्तम्ब-सूत्र-साहित्य में अनुसन्धानरत होने के कारण आपस्तम्ब के नाम से प्रणीत प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थ की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है। प्राय: धर्मसूत्रकारों के नाम से ही विविध स्मृतियों की लोकविश्रुति है, अत: इस सम्भावना से इस ओर प्रेरित हुआ कि कदाचित् आपस्तम्ब ने एक स्मृति ग्रन्थ का प्रणयन भी किया हो क्योंकि धर्मसूत्रकार के रूप में इनकी प्रामाणिकता में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। प्रस्तुत स्मृति में विविध धर्मशास्त्रीय विषयों, विशेषकर शुद्धि एवं प्रायश्चित विधानों से सम्पृक्त दश अध्याय हैं। परन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्रतिपादित मतों-सिद्धान्तों एवं विचारों से तादात्म्य के अभाव की स्थिति में यह कह सकना कठिन है कि आपस्तम्बस्मृति के प्रणेता आपस्तम्बधर्मसूत्रकार आचार्य आपस्तम्ब ही हैं। वैसे तो कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने आपस्तम्बधर्मसूत्रकार तथा अन्य आपस्तम्बकल्प-साहित्य के प्रणेता आचार्य के ऐक्य पर भी आशङ्का व्यक्त की है परन्तु अन्त में वे सम्पूर्ण आपस्तम्बकल्प के प्रणेता आचार्य के रूप में एक ही आपस्तम्ब को मुक्त कण्ठ स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु आपस्तम्बस्मृति तथा आपस्तम्बकल्प के प्रणेता ऋषि की अनन्यता में कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। भाषा-शैली एवं प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से यह एक उत्तरकालीन रचना प्रतीत होती है। अत: इसका कर्तृत्व निश्चित रूपेण कल्पप्रणेता आपस्तम्ब से सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। आपस्तम्बधर्मसूत्रकार आपस्तम्ब को आपस्तम्ब-श्रौत, गृह्य तथा शुल्बसूत्रकार आपस्तम्ब से पृथक् स्वीकार करके भी आपस्तम्बस्मृतिकार के साथ इनकी एकता के तर्कसङ्गत प्रमाण भी नहीं प्राप्त

होते हैं। अत: गम्भीर शोध के फलस्वरूप प्राप्त पुष्ट प्रमाणों की उपलब्धि न होने तक प्रस्तुत सन्दर्भ में कोई प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं।

सम्प्रति निष्कर्मरूपेण यह कहा जा सकता है कि कल्पसूत्रकार-आपस्तम्ब-कृत न होने पर भी आपस्तम्बस्मृति आपस्तम्बीय धर्मशास्त्रपरम्परा का ही उन्मीलन है। रचनाकौशल, प्रतिपाद्य-विषय तथा उद्देश्य की दृष्टि से स्मृति-ग्रन्थों के निकष पर सर्वथा सिद्ध तथा समर्थ आपस्तम्बस्मृति में आचार, शुद्धि एवं प्रायश्चित्त तथा धर्म एवं दर्शन का मणिकाञ्चन संयोग है। इसके अधिकांश मत मनुस्मृति आदि प्राचीन स्मृतियों के साथ अङ्गिरास्मृति से साम्य युक्त हैं। अत: अपनी स्मृति-सम्मत शैली, प्राञ्जल-प्रवाहपूर्ण तथा लालित्यमयी भाषा एवं लोकोपयोगिता के कारण सम्पादक के हृदय को आकृष्ट करने वाली आपस्तम्बस्मृति को विवेचना का विषय बनाकर सम्पादक सन्तुष्टि का अनुभव करता है। सानुवाद-पूर्वप्रकाशित होकर भी प्रस्तुत स्मृति का प्रस्तुत संस्करण पूर्व अनुवादकों के विशिष्ट आलोक में एक विशिष्ट उन्मेष एवं स्वरूप से समन्वित है। पाठकों के सौकर्य-हेतु इसे विस्तृत विषयानुक्रमणी, पाठालोचनपूर्वक सम्पादन, श्लोकानुक्रमणी तथा शुद्धि-प्रायश्चित्त-विधान-परिशिष्टों के साथ व्रतों एवं प्रायश्चित्तों के शास्त्रीय स्वरूप से भी समलंकृत किया गया है।

अत: विद्वज्जनगम्य आपस्तम्बस्मृति का प्रस्तुत संस्करण पूर्वप्रकाशित संस्करणों के अनुवादकों के विशिष्ट आलोक में अपनी दृष्टि प्रदान करते हुए पृथक्तया सुसज्जित करके इसलिए प्रदर्शित किया जा रहा है जिससे अपने विशिष्ट परिमल-सुरभि से यह पुष्प पाठकों के हृदय में अपने मधुर मकरन्द का प्रसार करके उनके चित्त को आकृष्ट कर सके।

प्रस्तुत ग्रन्थ-सम्पादन की मौलिक दिशा के आद्य प्रेरणा-स्रोत परम वैष्णव आचार्य-प्रवर गुरुदेव पूज्यपाद डॉ० अशोक कुमार कालिया तथा परम श्रद्धेय सर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्वत्-शिरोमणि आचार्य डॉ० बृजेशकुमार शुक्ल हैं जिनकी सर्वोन्मेषिनी कृपा एवं सर्वतोमुखी सहयोग तथा आशीर्वाद से आपस्तम्बकल्प- सूत्रानुशीलन की दिशा में प्रवेश करके आपस्तबस्मृति की ओर प्रवृत्ति हुई। अत: पूर्वोक्त गुरु-प्रसाद के साथ-साथ प्रगति-शिखर के आधारस्तम्भ पूज्य चरणारविन्द माता-पिता की प्रतिभोन्मेषकारिणी शिक्षा-संस्कार

तथा आशीर्वाद से ही स्वपितृनामाश्रित हिन्दी टीका-समन्वित प्रस्तुत स्मृति प्रकाशन को प्राप्त हो सकी है। प्रस्तुत संस्करण के वैशिष्ट्यों का श्रेय गुरु-शिक्षा तथा पितृ-कृपा को तथा त्रुटियों-दोषों एवं स्खलनों का दायित्व विद्वच्चरण-चञ्चरीक सम्पादक का है। अत: सुधी पाठकों से अनुरोध है कि प्रस्तुत पुष्प के सुगन्धित परिमल को ग्रहण करके इसके दोषपूर्ण पक्षों की ओर सम्पादक का ध्यान अवश्य आकृष्ट करेंगे जिससे अग्रिम संस्करण में उनका परिमार्जन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रन्थ सम्पादन के सन्दर्भ में सम्पादक डॉ० राधेश्याम शुक्ल, प्रकाशक, प्रतिभा प्रकाशन को हृदय से अपना कार्तज्ञ्य समर्पित करता है क्योंकि इन्होंने निष्ठापूर्वक इस ग्रन्थ का प्रकाशन करके इसे विद्वज्जन-गम्य बनाते हुए ग्रन्थ सम्पादन के इस महायज्ञ में पूर्णाहुति समर्पित की है।

गुरुपूर्णिमा-संवत् २०६१ **प्रयाग नारायण मिश्र**
लखनऊ

विषयाऽनुक्रमणिका

दशम अध्याय

परिशिष्ट



।। अथ ।।

अथ प्रथमोऽध्यायः

गो-रोधनादिविषये-गोहत्यायां च प्रायश्चित्तवर्णनम्

आपस्तम्बं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम्।
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः।। १ ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के दूषित अर्थात् गो-रोधनादि न करने योग्य कार्यों को करने के कारण दोषयुक्त या दोष को प्राप्त व्यक्तियों के दोष-परिहार-स्वरूप उनके कल्याण-हेतु आपस्तम्ब द्वारा सभी वर्णों के लिए क्रमशः पृथक्-पृथक् प्रोक्त प्रायश्चित्त-धर्मों के निर्णय का वर्णन किया जा रहा है-

परेषां परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम्।
विविक्तदेश आसीनमात्म-विद्यापरायणम्।। २ ।।

अनन्यमनसं शान्तं सत्त्वस्थं[1] योगवित्तमम्।
आपस्तम्बमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोऽब्रुवन्।। ३ ।।

समस्त मुनियों ने एकत्रित होकर अथवा एक साथ मिलकर दूसरों की निन्दा बदनामी से दूर रहने वाले, लोकापवाद-शून्य, ऋषियों में श्रेष्ठ, आत्मविद्या-परायण योग के उत्कृष्टतम ज्ञाता, सत्त्व-सम्पन्न अथवा तत्त्व-चिन्तन में लीन, एकान्त स्थान में एकाग्रचित्त मुद्रा में बैठे हुए शान्त-स्वरूप वाले आपस्तम्ब ऋषि के पास जाकर निवेदन किया।

---

१. तत्त्वस्थम्

भवगन्! मानवाः सर्वे सन्मार्गेऽपि स्थिता यदा।
चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम्।।४।।

हे भगवन्! जब सभी मनुष्य असत् के मार्ग पर चलकर दुराचरण करने में संलग्न होकर भी (बाद में) धर्मकृत्यों को करना चाहें तो उनके कल्याण-हेतु प्रायश्चित्तरूप धर्म-कार्यों का कथन करें।

यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादिपरिपालनम्।
कृषिकर्मादि चापत्सु[1] द्विजामन्त्रणमेव च।।५।।

(यद्यपि यह सत्य है कि) गृहस्थ-आश्रम का पालन करने वाले व्यक्ति के द्वारा गाय-बैल आदि पशुओं का पालन, बीज-वपन आदि कृषि-कर्म तथा विपत्ति के अवसरों पर विपत्ति-निदान-हेतु और अन्य अवसरों पर भोजन-हेतु ब्राह्मणों का आमन्त्रण आदि कर्म अवश्य ही किये जाने होते हैं।

देयञ्चाऽनाथकेऽवश्यं विप्रादीनाञ्च भेषजम्।
बालानां स्तन्यपानादिकार्यञ्च परिपालनम्।।६।।

अनाथों को सहायतार्थ दान देना अथवा सहयोग प्रदान करना तथा ब्राह्मण आदि को आवश्यकता पड़ने पर औषधि देना तथा बालक स्तन-पानादि उपचार-पूर्वक बच्चों का पालन-पोषण करना भी गृहस्थाश्रमी व्यक्ति को अवश्यमेव करना ही होता है।

एवं कृते कथञ्चित् स्यात् प्रमादो यद्यकामतः।
गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन्! ब्रूहि निष्कृतिम्।।७।।

इस प्रकार उपर्युक्त (गृहस्थ धर्म के आवश्यक) कर्त्तव्यों का पालन करते समय यदि न चाहते हुए भी अनायास गो आदि के विषय में कभी कोई प्रमाद अर्थात् भूल-चूक-जन्य अपराध या त्रुटि हो जाये तो उसके दोष-परिहार-हेतु हे भगवन् कृपया प्रायश्चित्त का कथन करें।

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः।
दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तम्बः सुनिश्चितम्।।८।।

---

१. वपने

ऋषियों के द्वारा इस (उपर्युक्त) प्रकार से निवेदित अर्थात् पूछे जाने पर प्रणिपात के कारण नीचे की ओर मुख किये हुए आपस्तम्ब ऋषि ने क्षण भर विचार करके (चिन्तन-मुद्रा में कुछ सोचकर) ऋषियों की ओर अभिमुख होकर ये (अग्रोल्लिखित) सुनिश्चित वचन कहे-

बालानां स्तन्यपानादिकार्ये दोषो न विद्यते।
विपत्तावपि विप्राणामामन्त्रणचिकित्सने।। ९।।

बालकों के स्तन्य-पानादि कार्य में किसी प्रकार विपत्ति की स्थिति आ जाने पर तथा ब्राह्मणों के आमन्त्रण और चिकित्सा आदि कार्य में किसी प्रकार की विपत्ति उत्पन्न हो जाने पर कोई ऐसा दोष नहीं लगता जिसके लिए प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता हो।

गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं रुजादिषु।[1]
केचिदाहुर्न दोषोऽत्र देहधारण-भेषजे[2] **।। १०।।**

गो-इत्यादि का उपचार-करते समय अथवा घास-पानी देकर उनकी भूख-प्यास-संतृप्ति हेतु सेवा-सुश्रूषा करते समय अस्थि आदि के भङ्ग हो जाने या मर जाने पर अपेक्षित प्रायश्चित्तों का वर्णन कर रहा हूँ। प्रस्तुत सन्दर्भ में कुछ आचार्यों का कहना है कि उपर्युक्त कार्य देहधारण के लिए उपचार आदि के रूप में किये जाते हैं। अतः औषधि रूप में उपर्युक्त-परिचार अथवा घी-तेल, नमक आदि कुछ भी देते समय यदि कोई दुर्घटना हो जाये तो भी प्रायश्चित्त करने योग्य कोई दोष नहीं होता है। क्योंकि,

औषधं लवणञ्चैव स्नेहपुष्ट्यन्नभोजनम्।
प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते।। ११।।

औषधि (औषधि के रूप में प्रदत्त कोई भी पदार्थ या उपचार-कार्य), नमक, घी-तैलादि चिकने पदार्थ, पौष्टिक अन्न और भोजन प्राणियों के प्राणों के अस्तित्व अर्थात् प्राणरक्षा के लिए होते हैं अतः इनका सेवन कराते समय

---

१. क-तृणादिषु, ख- तृषादिषु
२. स्नेहलवणभेषजे

घटित होने वाली आपत्ति या दुर्घटना-जन्य दोष परिहार के लिए किसी प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पन्तु दापयेत्।
अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते।। १२।।

अतिरिक्त अर्थात् आवश्यकता से अधिक और आवश्यकता के बिना (किसी को) कुछ भी नहीं देना चाहिए। उचित-समय पर आवश्यकतानुसार स्वल्प-मात्रा में ही देना चाहिए क्योंकि किसी को अतिरिक्त-प्रदान किये जाने पर दुःख ही होता है। अतः आवश्यकता से अधिक दिये जाने पर यदि कोई मर जाये अथवा विपत्ति में पड़ जाये तो उनके दोष-परिहार-हेतु कृच्छ्र अर्थात् प्रायश्चित्त का ही विधान है।

त्र्यहं निरशनात् पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम्।
पादः सायं त्र्यहं पादः प्रातर्भोज्यं तथा त्र्यहम्[1] ।। १३।।
प्रातः सायं दिनार्द्धञ्च पादोनं सांध्य-वर्जितम्।। १४।।

तीन दिन तक भोजन न करके निराहार-रहकर उपवास करने से (एक प्रकार का) पाद कृच्छ्र अर्थात् प्रायश्चित्त होता है। तीन दिन तक अयाचित अर्थात् बिना मांगे प्राप्त होने वाले भोजन मात्र को ग्रहण करने से (दूसरे प्रकार का) पाद कृच्छ्र होता है। तीन दिन केवल सायं काल में ही खाद्यांश लेने से (तीसरे प्रकार का) पाद कृच्छ्र तथा तीन दिनों तक मात्र प्रातःकाल में ही खाकर रहने से (चतुर्थ प्रकार का) पाद-कृच्छ्र होता है। प्रातः काल तथा सायं काल दोनों ही समय भोजन न करने को अर्द्ध-दिवस-कृच्छ्र तथा सायंकाल को छोड़कर दिन में एक बार भोजन करने को पादोन अर्थात् पौना (३/४) कृच्छ्र कहा जाता है।

प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत्।
अयाचितन्तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च।। १५।।

उपर्युक्त चार-प्रकार के पाद-कृच्छ्रों में शूद्र प्रातः पाद कृच्छ्र को करे जिसमें दिनत्रय-पर्यन्त केवल प्रातः काल भोजन किया जाता है। वैश्य तीन

---

१. सायं त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा त्र्यहम्।

दिन तक मात्र सायंकाल में भोजन करके तृतीय प्रकार के सायं पाद-कृच्छ्र, क्षत्रिय तीन दिन तक अयाचित भोजन करके दूसरे-प्रकार के पाद-कृच्छ्र तथा ब्राह्मण तीन दिन तक भोजन न करके त्रिदिवसीय-निराहार पूर्वक प्रथम प्रकार के पाद कृच्छ्र का पालन करे।

पादमेके चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्।
योजने पादहीनञ्च चरेत् सर्वं निपातने।। १६ ।।

गाय-इत्यादि को रोकने से यदि कोई विपत्ति आ जाये या कोई दुर्घटना हो जाये तो यथोक्त विधि से वर्णानुरूप पाद-कृच्छ्र करना चाहिए। गाय आदि को बांधने पर किसी विपत्ति के आने पर अर्द्ध-कृच्छ्र (जो सभी के लिए समान है) तथा जोतने पर आपतित दोष की स्थिति में पादोन (अर्थात् तीन-चौथाई) कृच्छ्र और गिर पड़ने से उत्पन्न आपत्काल में अथवा मर जाने की स्थिति में सम्पूर्ण कृच्छ्र करना चाहिए।

घण्टाभरणदोषेण गौस्तु यत्र विपद्यते।
चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत्।। १७ ।।

आभूषण के रूप में गाय के गले में घण्टा बांधते समय यदि कोई गाय मर जाये अथवा विपत्ति-ग्रस्त हो जाये तो अर्द्ध-कृच्छ्र का आचरण करना चाहिए (यहाँ सम्पूर्ण कृच्छ्र का विधान इस लिए नहीं है) क्योंकि विपत्ति का कारणभूत वह कार्य गाय के मण्डन-हेतु विहित है।

दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने।
स्तम्भशृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत्।। १८ ।।

दमन अर्थात् वश में करने, रोकने अथवा एकत्रित करने और जोतने के समय तथा खम्भे में जञ्जीर और रस्सी आदि बांधने के साधनों से बांधते समय यदि गाय मर जाये तो पादोन-कृच्छ्र करना चाहिए।

पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात्।
निपातयन्ति ये गास्तु[१] तेषां सर्वं विधीयते।। १९ ।।

पत्थरों से, लाठियों से अथवा किसी अन्य शस्त्र से बल-पूर्वक प्रहार

---

१. पापास्

करके जो पापी गाय को गिराकर मार डालते हैं उनके लिए सम्पूर्ण कृच्छ्र का विधान किया गया है।

प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियश्चरेत्।
कृच्छ्रार्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत्।। २०।।

उपर्युक्त दोष-परिहार-हेतु प्रायश्चित के रूप में ब्राह्मण को प्राजापत्य (एक प्रकार का यज्ञ जो पुत्र-हीन पिता अपनी पुत्री के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी नियत करने से पूर्व करता है) करना चाहिए, इससे एक चौथाई कम प्रायश्चित्त अर्थात् पादोन प्राजापत्य या पादोन-कृच्छ्र क्षत्रिय को करना चाहिए। वैश्य को अर्द्धकृच्छ्र तथा शूद्र को यथोक्त विधि से एक चौथाई अर्थात् पाद-कृच्छ्र करना चाहिए।

द्वौ मासौ पाययेद् वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत्।
द्वौ मासावेकवेलायां शेषकाले यथारुचि।। २१।।

प्रारंभिक दो मास तक नव-प्रसूता गाय का समस्त दूध बछड़े को ही पिलाना चाहिए अर्थात् दो मास तक गो-दोहन नहीं करना चाहिए, फिर अगले दो महीने तक दो स्तन दुहने चाहिए और दो बछड़े को देना चाहिए। अगले दो मास प्रातः सायं में एक ही समय गो-दोहन करना चाहिए और इसके बाद अपनी इच्छा एवं रुचि के अनुसार गो-दोहन करना चाहिए।।

दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते।
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत्।। २२।।

नव-प्रसूता गाय यदि प्रसव काल के दस दिनों या आधे मास अर्थात् पन्द्रह दिनों के अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो शिखा-सहित समस्त बाल बनवाकर प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान एवं आचरण करना चाहिए।

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम्।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवञ्च[1] जिंघांसिनाम्।। २३।।

अष्ट-गव अर्थात् आठ बैलों को जोतकर चलाया जाने वाला हल

---

१. द्विगवं हि

शास्त्र-सम्मत है। अत: कृषक को हल चलाने के कार्य में आठ-बैल रखने चाहिए। यही अष्ट-गव हल ही धर्मपूर्ण है, छ: बैलों का हल उससे निकृष्ट कोटि का येन-केन प्रकारेण अपना जीवन चलाने मात्र के इच्छुक व्यक्तियों का होता है। जबकि चार-बैलों से हल चलाने का कार्य निर्दयी लोगों का तथा (आजकल समाज में प्रचलित) दो बैलों का प्रयोग करके जोता जाने वाल हल हत्यारों का होता है।

अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिका-भेदने तथा।
नदीपर्वत-संरोधे मृते पादोनमाचरेत्।। २४।।

यदि अधिक बोझा खिंचवाने या अधिक काम लेने से बैल तथा नियम-विरुद्ध अधिक दोहन करने से गाय मर जाये अथवा कोई भी गो-वंशज नाक छेद कर नाथ डालने से या नदी एवं पर्वत में फंस जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो पूर्वोक्त पादोन-कृच्छ्र करके प्रायश्चित्त करना चाहिए।

न नारिकेलबालाभ्यां न मुञ्जेन न चर्म्मणा।
एभिर्गास्तु न बध्नीयाद् बद्ध्वा परवशो भवेत्।। २५।।

नारियल की जटाओं से निर्मित रस्सी से, बालों की बनी रस्सी से तथा मूँज की और चमड़े की रस्सी से गो-वंशज पशुओं को नहीं बांधना चाहिए क्योंकि इनसे बांधने पर गाय-बैल आदि की परवशता मानी जाती है जो उचित नहीं है।

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् वृषभं दक्षिणामुखम्।
पादलग्नाग्निदोषेषु[१] प्रायश्चित्तं न विद्यते।। २६।।

बैल को दक्षिण की ओर मुख करके कुशों एवं काश की बनी रस्सी से बांधना चाहिए (सम्भवत: गाय को बांधने का विधान नहीं है) रस्सी आदि में पैर फंस जाने के कारण गिरं पड़ने, अग्नि से जल जाने अथवा सांप के काट लेने से पशु के मर जाने पर कोई दोष नहीं होता, अत: किसी प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

---

१. पाद लग्नाहि दाहेषु।

व्यापन्नानां बहूनान्तु रोधने बन्धनेऽपि च।
भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत्।। २७।।

व्यापन्न अर्थात् स्थानापन्न-घायल अथवा गर्भस्रावजन्यपीड़ा से ग्रस्त बहुत-सी गायों का रोधन अथवा बन्धन-कार्य करते समय तथा चिकित्सक द्वारा अनुपयुक्त उपचार किये जाने पर (भी) यदि गो-मरण हो जाये तो गोहत्या-हेतु विहित (पूर्वोक्त) दो गुना प्रायश्चित्त अथवा गोव्रत करना चाहिए।

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलस्य च कर्त्तने।
सप्तरात्रं पिबेद् वज्रं[1] यावत् स्वस्थः पुनर्भवेत्।। २८।।

(गाय की) सींग टूट जाने पर, शरीर के किसी भाग की हड्डी के टूटने पर तथा पूंछ कट जाने पर सात-रात्रि-पर्यन्त अर्थात् सात दिनों तक अथवा उसके फिर से स्वस्थ होने तक मात्र दुग्ध-पान करके अथवा वज्र अर्थात् यव-मिश्रित गोमूत्र का पान करके प्रायश्चित्त करना चाहिए।

गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद् द्विजः।
एतद्विमिश्रितं वज्रमुक्तञ्चोशनसा[2] स्वयम्।। २९।।

उपर्युक्त प्रायश्चित्त के रूप में ब्राह्मण को गाय के मूत्र से मिश्रित जौ से तैयार आहार का सेवन करना चाहिए। यह गो-मूत्र-मिश्रित-यवान्न स्वयं शुक्राचार्य के द्वारा वज्र सञ्ज्ञा से अभिहित किया गया है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के उत्तरार्द्ध में 'वज्रमुक्तञ्चोशनसा' पद के स्थान पर क्रमशः 'चैव भुक्तञ्चोशनसा' तथा 'चैव मुक्तञ्चोशनसा' पाठ भी मिलते हैं इसमें चैव भुक्तञ्चोशनसा पाद अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है इसके अनुसार इसका अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है–

गाय के मूत्र से मिश्रित जौ से तैयार आहार का सेवन करके या गोमूत्र में जौ का आटा मिलाकर पान करके ब्राह्मण को उपर्युक्त प्रायश्चित्त करना चाहिए क्योंकि गोमूत्र-मिश्रित यव का सेवन करके स्वयं शुक्राचार्य भी पाप-मुक्त हो गये थे। अथवा इस गो-मूत्र-मिश्रित यव का सेवन स्वयं शुक्राचार्य द्वारा किया गया था।

---

१. दुग्धं

२. (क) चैव भुक्तञ्चोशनसा, (ख) चैव मुक्तञ्चोशनसा

देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च।
एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते।। ३०।।

देवतीर्थों अथवा देव-मूर्ति के किसी उत्सव में, विहारों में, कुओं में गिरकर और गोष्ठी अथवा यज्ञमण्डप आदि स्थानों पर यदि कोई गाय मर जाये तो इसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है।

एका यदा तु बहुभिर्दैवाद् व्यापादिता क्वचित्।
पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्-पृथक्।। ३१।।

यदि कभी कोई गाय दुर्भाग्य से बहुत से लोगों के द्वारा मार दी जाये तो उस गाय के वे सब हत्यारे अलग-अलग हत्या के एक चौथाई-एक चौथाई प्रायश्चित्त अर्थात् पाद-कृच्छ्र को करें।

यन्त्रणे गोचिकित्सार्थे मूढगर्भ-विमोचने।
यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते।। ३२।।

किसी पीड़ा से या कष्ट से ग्रस्त किसी गाय की चिकित्सा करने के लिए उसको जकड़ने अर्थात् नियन्त्रण करने में अथवा गर्भ में ही नष्ट गो-सन्तति को बाहर निकालने अर्थात् मृत अथवा अपक्वजन्मा-गर्भ का प्रसव कराते समय यदि प्रयत्न करने के बाद भी कोई विपत्ति आ जाये या दुर्घटना हो जाये अर्थात् गाय मर जाये अथवा अङ्ग-वैकल्य को प्राप्त हो जाये तो भी किसी प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं होती है।

सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रु-कर्तनम्।[१]
तृतीये तु शिखा धार्या सशिखन्तु निपातने।। ३३।।

एक पैर टूटने पर रोम-कर्तन, दो पैरों के टूटने पर दाढ़ी-मूछों का कर्तन, तृतीय पाद-पर्यन्त टूट जाने पर शिखा को छोड़ कर शेष बालों का मुण्डन तथा निपातन अर्थात् मृत्यु हो जाने पर शिखा-सहित समस्त बालों का मुण्डन करवा डालना चाहिए।

अथवा

---

१. श्मश्रुधारणम्

प्रायश्चित्त के प्रथम पाद में रोमों का मुण्डन, द्वितीय पाद में दाढ़ी-मूँछ का कर्तन अर्थात् दाढ़ी-मूँछ धारण करके अन्य बालों का मुण्डन, तृतीय पाद में शिखा के अतिरिक्त शेष बालों का मुण्डन कराना चाहिए और निपातन अर्थात् मृत्यु की स्थिति में विहित चतुर्थ-पाद सहित अर्थात् सम्पूर्ण प्रायश्चित्त में शिखा-सहित समस्त बालों का मुण्डन कराना चाहिए।

सर्व्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम्।
एवमेव तु नारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम्।। ३४।।

नारियों के शिरो-मुण्डन के विषय में विशेष ही विकल्प का विधान किया गया है। नारियों के समस्त बाल न बनवाकर, समस्त बालों को पकड़कर ऊपर उठाकर ऊपर के दो अंगुल परिमाण में काट देना चाहिए और इसे ही नारियों का शिरो-मुण्डन समझना चाहिए।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः

(आपस्तम्बीय धर्मशास्त्र का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण)



अथ द्वितीयोऽध्यायः

शुद्ध्यशुद्धि-विवेकवर्णनम्

कारुहस्तगतं पुण्यं यच्च ग्रामाद्विनिःसृतम्।[1]
स्त्रीबालवृद्धचरितं सर्वमेतच्छुचि स्मृतम्।।१।।

शिल्पी अर्थात् कारीगर के हाथ में गयी हुई वस्तु और किसी अवसर-विशेष पर या कारण-विशेष से गाँव से बाहर ले जायी गयी वस्तु पवित्र मानी जाती है। स्त्रियों, बच्चों तथा वृद्धों द्वारा किया गया आचरण पवित्र माना जाता है। अर्थात् स्त्री-बाल-वृद्ध जो भी कुछ करें वह पवित्र माना जाता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत श्लोक का एक दूसरा पाठ निम्नवत् प्राप्त होता है—

कारुहस्तगतं पुण्यं यच्च ग्रामाद्विनिःसृतम्।[2]
स्त्रीबालवृद्धाचरितं प्रत्यक्षादृष्टमेव च।।

शिल्पी के हाथ में गयी हुई वस्तु, गाँव से बाहर ले जायी गयी वस्तु तथा स्त्री, बच्चा एवं वृद्ध-संवर्ग के द्वारा किया गया आचरण-कार्य-व्यवहारादि पवित्र होता है तथा जो वस्तु प्रत्यक्ष में अपनी आँखों से न देखी गयी हो वह भी पवित्र होती है।

प्रपास्वरण्येषु जलेऽथ नीरे द्रोण्यां जलं यच्च विनिसृतं[2] भवेत्।
श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पञ्चगव्येन शुद्धिः।। २।।

प्याऊ पर पिलाये जाने वाले जल को पीकर, जङ्गल आदि में कहीं एक स्थान पर एकत्रित जल को पीने से, दो पहाड़ों के मध्य घाटी से निकलने वाले

---

१. पात्रद्विनिःसृतम्—पात्र से बाहर निकाली गयी वस्तु

२. यच्च केशविनिःसृतम्—केशों से टपक कर गिरने वाला जो जल हैउसका पान करने पर भी पञ्चगव्य से शुद्धि होती है।

जल को पीने से; मशक में स्थित जल का पान करने से तथा जाति से बहिष्कृत व्यक्ति एवं चाण्डाल के हाथ से जल पीने से जो दोष माना जाता है उसकी शुद्धि पञ्चगव्य (गो-दूध, दधि, मूत्र, गोबर एवं घी) का पान करने से ही होती है।

न दुष्येत् सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।। ३ ।।

निरन्तर प्रवाहित होती रहने वाली जल-धारा कभी दूषित नहीं होती है, वायु के द्वारा उड़ाये जाने वाले धूल के कण कभी दूषित नहीं होते हैं तथा स्त्रियाँ, वृद्ध और बालक अर्थात् बच्चे कभी-भी दूषित नहीं होते हैं।

आत्मशय्या च वस्त्रञ्च जायाऽपत्यं कमण्डलुः।
आत्मनः शुचिरेतानि परेषामशुचीनि तु।। ४ ।।

अपनी शय्या, अपने वस्त्र, अपनी पत्नी, अपनी सन्तति तथा अपना कमण्डलु अर्थात् जल-पात्र अपने होने पर और अपने पास रहने पर पवित्र होते हैं तथा दूसरे के पास जाने पर या दूसरे के होने पर निश्चित रूपेण अशुद्ध हो जाते हैं।

अन्यैस्तु खनिताः कूपास्तडागानि तथैव च।
एषु स्नात्वा च पीत्वा च पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। ५ ।।

दूसरे के द्वारा खोदे गये या खुदवाये गये कुएँ तथा तालाब के जल में स्नान करने से अथवा उसके जल का पान करने से (अशुद्ध हुआ व्यक्ति) पञ्चगव्य का पान करके शुद्ध होता है।

उच्छिष्टमशुचित्वञ्च यच्च विष्टानुलेपनम्।
सर्वं शुद्ध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुद्ध्यति।। ६ ।।

अशुद्धि के कारण परित्यक्त वस्तु अथवा जूँठी वस्तु, अपवित्रता, यहाँ तक कि विष्टा आदि के लग जाने से जो महामालिन्य और जो अशुचिता आ जाती है वह सब अर्थात् मलमूत्रादि से अनुलिप्त वस्तु भी जिस जल से परिक्षालित कर देने पर शुद्ध हो जाती है वह जल स्वयं किस प्रकार शुद्ध होता है? यह बताया जा रहा है-

सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च।
गवां मूत्रपुरीषेण तत्तोयं तेन शुद्ध्यति।। ६।।

परिक्षालनादि द्वारा सभी-प्रकार की अशुद्धियों का शमन कर देने वाला वह (उपर्युक्त) जल सूर्य की किरणों के सम्पर्क में आने से, वायु के स्पर्श से तथा गायों के मल-मूत्र-त्याग से शुद्धि को प्राप्त करता है।

अस्थिचर्मादियुक्तन्तु खराश्वोष्ट्रोपदूषितम्।
उद्धरेदुदकं सर्व्वं शोधनं परिमार्जनम्।। ८।।

किसी पात्र में रखा हुआ जल यदि किसी की हड्डी या चमड़े आदि दूषित पदार्थों के सम्पर्क से दूषित हो जाये अथवा गधा, घोड़ा, ऊँट आदि के द्वारा स्पर्श कर लेने या जूँठा कर दिये जाने से दूषित हो जाये तो सम्पूर्ण जल को निकाल कर फेंक देना चाहिए तथा पात्र की शुद्धि-हेतु उस पात्र को मिट्टी आदि से मांज कर स्वच्छ जल से धो लेना चाहिए, यही उसका शोधन अर्थात् शुद्धीकरण है।

कूपो मूत्रपुरीषेण ष्ठीवनेनाऽपि दूषितः।
श्वशृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यादैश्च जुगुप्सितः।। ९।।
उद्धृत्यैव च तत्तोयं सप्तपिण्डान् समुद्धरेत्।
पञ्चगव्यं मृदापूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम्।। १०।।

यदि कोई कुआँ अर्थात् कुएँ का जल किसी के भी मल-मूत्रोत्सर्ग करने तथा थूकने से दूषित एवं अपवित्र हो गया हो अथवा कुत्ता, सियार अर्थात् गीदड़, गधा या ऊँट के द्वारा तथा शेर चीता आदि माँस-भक्षी जन्तुओं के द्वारा अथवा कच्चे माँस या शव के द्वारा दूषित करके घृणा के योग्य बना दिया गया हो तो उसके सम्पूर्ण जल को निकाल कर उसके तलहटी में जमी मिट्टी को सात-पिण्डों के परिमाण में अथवा यथा-सम्भव मात्रा में निकाल कर शुद्ध मिट्टी से पवित्र करके पञ्चगव्य के द्वारा उसका शोधन अर्थात् शुद्धीकरण, परिष्कार एवं परिमार्जन किया जाता है।

वापीकूपतडागानां दूषितानाञ्च शोधनम्।
कुम्भानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत्।। ११।।

दूषित हुई वापी अर्थात् बावलियों, दूषित कुओं और तालाबों का शोधन अर्थात् पवित्रीकरण करने के लिए उनमें से सौ घड़े जल निकाल कर फेंक देने के पश्चात् उसमें पञ्चगव्य का प्रोक्षण करना चाहिए।।

यश्च कूपात् पिबेत्तोयं ब्राह्मणः शवदूषितात्।
कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति में संशयो भवेत्।। १२।।

यदि कोई ब्राह्मण शव से दूषित कुएँ के जल का पान कर लेता है तो वह महद्दोष का भागी होता है। अतः उसकी अर्थात् उस ब्राह्मण की शुद्धि किस प्रकार सम्भव है? इस विषय में मुझ (पृष्टा ऋषियों) को संशय हो रहा है। अतः कृपया शुद्धि एवं प्रायश्चित्त के विधानों का कथन करके मेरी संशय ग्रन्थियों को छिन्न कीजिए।

अक्लिन्नेनाऽप्यभिन्नेन शवेन परिदूषिते।
पीत्वा कूपे ह्यहोरात्रं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। १३।।

अक्लिन्न अर्थात् रक्तादि-स्राव के राहित्य से युक्त अर्थात् खून आदि के गीलेपन से रहित विना-फूटे हुए अभिन्न अर्थात् अखण्डित सूखे एवं समूचे शव के द्वारा प्रदूषित कुएँ का जल पीकर अशुद्ध ब्राह्मण एक दिन और एक रात तक पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध हो जाता है। जबकि-

क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत् पिबेत्।
शुद्धिश्चान्द्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा।। १४।।

खून से गीले लतपथ अर्थात् रक्तरञ्जित, छिन्न-भिन्न अर्थात् टूटे-फूटे शव के कुएँ में विद्यमान होने पर यदि कोई ब्राह्मण उस प्रदूषित जल का पान कर लेता है तो चान्द्रायण अथवा तप्तकृच्छ्र-व्रत करने से अत्यधिक कठिनाई से उसकी शुद्धि होती है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः

(आपस्तम्बीय धर्मशास्त्र का द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण)

☆ ☆ ☆

अथ तृतीयोऽध्यायः

गृहेऽविज्ञातस्यान्त्यजादिनिवेशने-बालादि-विषये च प्रायश्चित्तम्

अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि।
सम्यग् ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम्।। १।।

यदि कोई अविज्ञात अर्थात् अपरिचित व्यक्ति अथवा कोई अपरिचित अन्त्यज अर्थात् नीच जाति में उत्पन्न शूद्र, चाण्डाल आदि में से कोई व्यक्ति अज्ञान-वश किसी द्विज अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय एवं वैश्य के घर में निवास कर जाता है तो इसका सम्यग् ज्ञान होने पर द्विज-वृन्द उस पर दया करके भी उसे दण्डादि न देकर भी प्रासाद-शोधन एवं प्रायश्चित्त करते हैं।

चान्द्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम्।
प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः।। २।।

उपर्युक्त अशुद्धि की स्थिति में प्रायश्चित्त के रूप में द्विजादिकों की शुद्धि चान्द्रायण या पराक सञ्ज्ञक व्रत एवं अनुष्ठान करने से होती है क्योंकि प्राजापत्य व्रत शूद्र के लिए विहित है। अतः शेष शोधन-कृत्य उसी के अनुसार करने चाहिए।

यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत्।
तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत्।। ३।।

जिनके द्वारा वहाँ पर (अविज्ञात अन्त्यज द्वारा निवास किये गये अशोधित घर में) पक्वान्न का उपभोग किया गया हो उनको घोर प्रायश्चित्त के रूप में कृच्छ कराना चाहिए। शूद्रों द्वारा निवास किये गये घर में जिन्होंने पक्वान्न ग्रहण

किया हो उनके घर में भी जिनके द्वारा भोजन किया जाय उनको पाद-कृच्छ करना चाहिए।

कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्श-संसर्ग-दूषणात्।[१]
तेषामेकोपवासेन पञ्चगव्येन शोधनम्।। ४।।

दुष्टों अर्थात् अन्त्यजों के साथ एक ही कुएँ में पान करने तथा उनका स्पर्श और संसर्ग करने से जो (शव से दूषित होने वाला) दोष अर्थात् अपावित्र्य हो जाता है उसका शोधन अर्थात् परिहार-रूप शुद्धीकरण एक दिन उपवास करके पञ्चगव्य का सेवन करने से सम्भव है।

बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वाऽपि[२] पीडिता।
तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम्।। ५।।

बालक, वृद्ध तथा रोगी, गर्भिणी-स्त्री अथवा वायु-विकारादि अन्य किसी कष्ट से पीड़ित स्त्री के लिए उपर्युक्त कूपैकपान तथा स्पर्श दोष के प्रायश्चित्त के रूप में एक रात्रि मात्र का उपवास तथा पञ्चगव्य-सेवन और बालकों के लिए मात्र दोपहर का उपवास और पञ्चगव्य सेवन विहित है।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः।
प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च।। ६।।

जिसकी अवस्था अस्सी वर्ष हो गयी हो अर्थात् जो अस्सी वर्ष के बूढ़े हों, तथा जो बालक सोलह वर्ष से कम उम्र के हों उन्हें तथा स्त्रियों एवं रोगग्रस्त व्यक्तियों को आधा प्रायश्चित्त ही करना चाहिए।

न्यूनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च।
चरेद् गुरुः सुहृद् वाऽपि प्रायश्चित्तं विशोधनम्।। ६।।

ग्यारह वर्ष से कम और पाँच वर्ष से अधिक अर्थात् पाँच से ग्यारह वर्ष की अवस्था वाले बालकों के लिए आवश्यक होने पर उपर्युक्त प्रायश्चित्त

---

१. स्पर्शने शवदूषणम्
२. वायुपीडिता

उसके गुरु या उससे ज्येष्ठ या वरिष्ठ किसी परिजन अथवा शुभेच्छु मित्र-भ्रात्रादि को करना चाहिए।

अथैतैः[१] क्रियमाणेषु येषामर्त्तिः प्रदृश्यते।
शेषसम्पादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा।।८।।

पाँच से ग्यारह-वर्ष की अवस्था वाले इन बालकों द्वारा स्वयं प्रायश्चित्त रूप व्रतादि किये जाते समय जिनको जिस-समय कष्ट की अनुभूति होने लगे वे उसी समय उस व्रत का त्याग कर दें। इस अपूर्ण व्रतादि की पूर्णता का श्रेय गुरु आदि का होता है क्योंकि उनका उतना शेष प्रायश्चित्त-रूप व्रत गुरु-वृन्दों द्वारा कर दिये जाने पर शुद्धि हो जाती है जिससे उनको कष्ट न हो।

क्षुधाव्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते।
ये न रक्षन्ति भक्तेन[२] तेषां तत् किल्बिषं भवेत्।। ९ ।।

यदि भूख और व्याधि से पीड़ित रोगग्रस्त शरीर वाले मनुष्यों के समक्ष प्रायश्चित्त का पालन करते समय प्राणों का सङ्कट आ जाये तो उन्हें भक्ति-पूर्वक यथा-सम्भव आपत्कालिक आचरण करके प्राणों की रक्षा करनी चाहिए। ऐसी स्थिति में जो कालोचित शैथिल्य के साथ आचरण करके प्राणों की रक्षा नहीं करते अथवा जो उपदेष्टा सामर्थ्य के अनुसार शिथिल प्रायश्चित्त का विधान करके प्राण-रक्षा का उपाय नहीं बताते हैं, वे उस प्राण-नाश-जन्य पाप के भागी होते हैं।

पूर्णेऽपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना।
अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः।। १० ।।

नियम-पूर्वक यथा-विहित कालपर्यन्त सम्पूर्ण प्रायश्चित्त पूर्ण कर लेने पर भी ब्राह्मणों के बिना शुद्धि नहीं होती है, जबकि अपरिहार्य कष्टादि-जन्य अपूर्ण समय में भी अर्थात् यथा-विहित काल के पूर्ण न होने पर भी उत्तम ब्राह्मण उस प्रायश्चित्त रूप शुद्धि को समष्टि प्रदान कर देते हैं।

---

१. अथवा

२. वक्तार:

समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित्।
विप्रसम्पादनं कर्म[१] उत्पन्ने प्राण-संशये।। ११।।

क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन तीन वर्णों के लोगों में प्राणसंशय की विषम स्थिति के आ जाने पर भी प्रायश्चित्त के उपदेष्टा ब्राह्मण द्वारा समयानुरूप यथाशक्ति प्रायश्चित्तोपसंहार के कथन के बिना कोई यह नहीं कह सकता कि कर्म समाप्त हो गया। अत: प्राण-सङ्कट की इस स्थिति में वह प्रायश्चित्त-कर्म ब्राह्मण के द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है।

सम्पादयन्ति यद्विप्राः स्नानतीर्थं फलञ्च तत्।[२]
सम्यक् कर्तुरपापं स्याद् व्रती च फलमाप्नुयात्।। १२।।

किसी अन्य के द्वारा किये जाने योग्य कोई प्रायश्चित्तादि कर्म प्रायश्चित्त के अनुष्ठान के मध्य आयी आकस्मिक विषमता के कारण जब किसी ब्राह्मण के द्वारा सम्पादित किया जाता है या किसी से सम्पादित कराया जाता है तो वह कार्य मानों तीर्थ-स्नान रूप होकर तीर्थ-स्नान से प्राप्त होने वाले फल को प्रदान करने वाला होता है। ऐसी स्थिति में जिसके द्वारा प्रायश्चित्तादि कर्म करणीय होता है उस व्रती को अपेक्षित फल की प्राप्ति होती है तथा विकल्प के रूप में कार्य को सम्पादित करने वाले व्यक्ति को कोई पाप नहीं लगता है प्रत्युत् वह भी पाप-मुक्त हो जाता है।

इतयापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः

(आपस्तम्बीय धर्मशास्त्र का तृतीय अध्याय सम्पूर्ण)

☆ ☆ ☆

---

१. कार्यं

२. स्नानं तीर्थफलप्रदं

अथ चतुर्थोऽध्यायः

चाण्डालकूपजलपानादौ पानादिषूदक्यादि-संस्पर्शे च प्रायश्चित्तम्

चाण्डालकूपभाण्डेषु योऽज्ञानात् पिबते जलम्।
प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णे-वर्णे विधीयते।। १।।

चाण्डाल के कुएँ में अथवा चाण्डाल के बर्तनों में जो व्यक्ति अज्ञान-वश जल का पान कर लेता है (वह दूषित हो जाता है अतः) प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को पृथक्-पृथक् किस प्रकार का प्रायश्चित्त करना चाहिए, यह बताया जा रहा है।

चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु भूमिपः।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत्।। २।।

अज्ञान-वश किसी चाण्डाल के कुएँ अथवा बर्तन में जल पीने के कारण दूषित हुए ब्राह्मण-वर्ण के व्यक्ति को प्रायश्चित्त के रूप में सान्तपन-व्रत तथा क्षत्रियों को प्राजापत्य का अनुष्ठान करना चाहिए। वैश्य को क्षत्रिय-प्रायश्चित्त रूप प्राजापत्य व्रत का अर्द्धांश अर्थात् अर्द्ध-प्राजापत्य तथा शूद्र को पादांश अर्थात् चौथाई प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा।
प्रमादात् स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्याद् विशोधनम्।। ३।।

भोजन करके उच्छिष्ट हुआ कोई व्यक्ति जूँठे मुँह-हाथ लिए, बिना आचमन किये अर्थात् हस्त-मुख-प्रक्षालन आदि शुद्धि के पूर्व यदि प्रमाद-वश-चाण्डालों अथवा श्वपच अर्थात् अति नीच और पतित जाति के या जाति-बहिष्कृत

किसी पुरुष या कुत्तों को खिलाने वाले व्यक्तियों के द्वारा स्पर्श को प्राप्त हो जाये तो उसे शुद्धि अर्थात् शोधन और परिष्करण करना चाहिए।

गायत्र्यष्टसहस्त्रन्तु द्रुपदां वा शतं जपेत्।
जपंस्त्रिरात्रमनश्नन् पञ्चगव्येन शुद्धयति।।४।।

उच्छिष्टावस्था में चाण्डालादि का स्पर्श हो जाने पर आठ हज़ार गायत्री अथवा द्रुपदादिव मुमुचानः रूप में प्रोक्त सौ द्रुपद मन्त्रों का जप करना चाहिए। इस प्रकार से उपवास-पूर्वक तीन रातों तक उपर्युक्त मन्त्र का जप करके पञ्चगव्य के सेवन से व्यक्ति का विशोधन होता है।

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः।
प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद् भुक्त्वोच्छिष्टः षडाचरेत्।।५।।

जब कभी मल-मूत्र का उत्सर्जन करने पर (भी) कोई द्विज अर्थात् ब्राह्मण किसी चाण्डाल के द्वारा छू लिया गया हो तो उसे (भी) तीन रात्रि का उपर्युक्त प्रायश्चित्त करना चाहिए तथा यदि भोजन करके उच्छिष्ट दशा में चाण्डाल द्वारा ब्राह्मण का स्पर्श कर लिया जाये तो उसे सामान्य लोगों के लिए उपरिवत् उक्त त्रिदिवसीय प्रायश्चित्त को छः रात्रि-पर्यन्त करना चाहिए।

पानमैथुनसम्पर्के तथा मूत्रपुरीषयोः।
सम्पर्कं यदि गच्छेत्तु उदक्या चान्त्यजैस्तथा।।६।।
एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।
भोजने च त्रिरात्रं स्यात् पाने तु त्र्यहमेव च।।७।।

जल-पान करते समय अथवा मैथुन के सम्पर्क में होने पर तथा मल-मूत्रोत्सर्ग करते समय या करके लौटते समय यदि किसी रजस्वला स्त्री अथवा अन्त्यजों अर्थात् शूद्रों के साथ किसी का सम्पर्क हो जाये अथवा इन अन्त्यजों तथा रजस्वला अर्थात् ऋतुमती स्त्रियों के द्वारा किसी का स्पर्श कर लिया जाये तो प्रायश्चित्त किस प्रकार किया जाये? अथवा यदि कोई व्यक्ति रजस्वला स्त्रियों अथवा अन्त्यजों के साथ जल-पान, मैथुन तथा मल-मूत्रादि के सम्पर्क में आ जाये अथवा इनके स्पर्श को प्राप्त कर ले तो किस प्रकार

प्रायश्चित्त करे? यह निर्दिष्ट करते हुए आपस्तम्ब का मत है कि भोजन में रजस्वला-स्त्री अथवा अन्त्यज से सम्पर्क होने पर तीन रात्रि का तथा जलपान करने में सम्पर्क हो जाने पर तीन दिन का प्रायश्चित्त कर्म करना चाहिए।

मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात् तथा मूत्रपुरीषयोः।
दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम्॥ ८॥

रजस्वला स्त्री अथवा शूद्रा के साथ मैथुन के सम्पर्क में पाद कृच्छ्र का विधान है और उतना ही प्रायश्चित्त मल मूत्रोत्सर्ग के समय रजस्वला-स्पर्श तथा अन्त्यज-संस्पर्श की स्थिति में करना चाहिए। दूसरे मत में मूत्र के सम्पर्क में एक दिन का तथा पुरीष अर्थात् मल के सम्बन्ध में तीन दिन का उपवास रूप प्रायश्चित्त करना चाहिए।

वृक्षारूढे तु चाण्डाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति।
फलानि भक्षयेत्तस्य कथं शुद्धिर्विनिर्दिशेत्॥ ९॥

यदि कोई चाण्डाल किसी वृक्ष पर चढ़ा हो और कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य भी उसी वृक्ष पर विराजमान हो। इस प्रकार एक ही वृक्ष पर चाण्डाल के साथ बैठा द्विज फलों का सेवन करले तो प्रकारान्तर चाण्डाल-स्पर्श-पूर्वक फल सेवन से दूषित वह द्विज अपनी शुद्धि किस प्रकार कर सकता है? कृपया इसका निर्देश कीजिए।

ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत्।
एकरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥ १०॥

(उपर्युक्त दोष-परिहार-हेतु) ब्राह्मणों को भली-भाँति सूचित करके अर्थात् अपना दोष बताकर उनसे भलीभांति प्रायश्चित्त की अनुज्ञा प्राप्त करके वस्त्रों-सहित स्नान करे फिर एक रात्रि का उपवास करके पञ्चगव्य का सेवन करने से दूषित व्यक्ति शुद्धि को प्राप्त करता है।

येन केनचिदुच्छिष्टो अमेध्यं स्पृशति द्विजः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥ ११॥

किसी भी भोज्य-पदार्थ का सेवन करके यदि कोई उच्छिष्ट हाथ-मुँह

लिये द्विज अर्थात् ब्राह्मण किसी अमेध्य अर्थात् अपवित्र, अस्वच्छ अननुमत पदार्थ या विष्टा आदि का स्पर्श कर ले तो वह एक दिन और एक रात उपवास करके पञ्चगव्य-सेवन के द्वारा शुद्ध होता है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः

(आपस्तम्बीय धर्म-शास्त्र का चतुर्थ अध्याय-सम्पूर्ण)



अथ पञ्चमोऽध्यायः

वैश्यान्त्यजश्वपाकोच्छिष्टभोजने प्रायश्चित्त-वर्णनम्

चाण्डालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन।
अनभ्युक्ष्य पिबेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।। १।।

द्विज वर्ण का कोई व्यक्ति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का कोई व्यक्ति जब कभी किसी चाण्डाल के द्वारा छू लिया जाये और बिना स्नान किये जल-पान कर ले तो उसका प्रायश्चित्त कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए आपस्तम्ब का मत है कि-

ब्राह्मणस्तु त्रिरात्रेण पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
क्षत्रियस्तु द्विरात्रेण पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
अहोरात्रं तु वैश्यस्य पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। २।।

चाण्डाल के द्वारा स्पर्श होकर बिना स्नान किये जलपान कर लेने से अशुद्ध ब्राह्मण तीन-रात्रि-पर्यन्त प्रायश्चित्त करके पञ्चगव्य से शुद्ध होता है जबकि क्षत्रिय-वर्ण का व्यक्ति दो रात्रि में व्रत करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्धि को प्राप्त करता है। वैश्य के लिए एक दिन और एक रात्रि के व्रतपूर्वक पञ्चगव्य का विधान है।

चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं न वै भवेत्।
व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते।। ३।।

चतुर्थ वर्ण अर्थात् शूद्र के लिए करणीय कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है क्योंकि शूद्र के लिए किसी भी व्रत, तप अथवा होम का विधान नहीं है। यहाँ तक कि,

पञ्चगव्यं न दातव्यं तस्य मन्त्रविवर्जनात्।
ख्यापयित्वा द्विजानान्तु शूद्रो दानेन शुद्ध्यति।। ४।।

शूद्र के मन्त्र-हीनत्व अर्थात् शूद्र के लिए मन्त्र का निषेध होने के कारण उसे शुद्धि-हेतु पञ्चगव्य भी नहीं देना चाहिए। (उपर्युक्त श्लोकों में शूद्र में किसी दोषत्व की चर्चा भी नहीं की गयी है फिर भी शुद्धि की किसी आवश्यकता के होने पर यह समझिए कि) ब्राह्मणों के समक्ष अपना अपराध स्वीकार करके या ब्राह्मणों के मध्य अपने अपराध की सार्वजनिक सूचना देकर मात्र दान करने से ही शूद्र शुद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः।
अहोरात्रन्तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति।। ५।।

जब कोई द्विज अज्ञान वश किसी ब्राह्मण का जूठा भोजन कर लेता है तो वह एक अहोरात्रि गायत्री का जप करके शुद्धि को प्राप्त करता है।

उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुङ्क्तेऽज्ञानाद् द्विजो यदि।
शङ्खपुश्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति।। ६।।

यदि कोई द्विज अज्ञानवश वैश्य-वर्ण के किसी जाति के व्यक्ति का उच्छिष्ट ग्रहण कर लेता है तो वह द्विज शंखपुष्पी का रस पीकर तीन रात्रियों में शुद्ध होता है।

ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन।
न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः।। ७।।

यदि कोई द्विज कभी किसी ब्राह्मणी के साथ उसका उच्छिष्ट खा ले तो विद्वज्जन उसमें नित्य ही कोई दोष नहीं मानते हैं।

उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात् पिबतेऽपि[1] वा।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानङ्गिराऽब्रवीत।। ८।।

भगवान् अङ्गिरा ने बताया है कि ब्राह्मणी के अतिरिक्त किसी अन्य जाति की स्त्रियों का जूठा भोजन करने या कुछ खाने अथवा जूठे पेय पदार्थ

१. स्पृशतेऽपि वा

का पान करने अथवा उनका स्पर्श-मात्र कर लेने से प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है।

अन्त्यानां भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वा द्विजातयः।
चान्द्रायणं तदर्द्धार्द्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः।। ९ ।।

शूद्रों के उच्छिष्ट भोजन अर्थात् शूद्रों के खाने से बचे हुए भोजन का सेवन करके दूषित हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य प्रायश्चित्त के रूप में क्रमशः चान्द्रायण-व्रत, अर्द्ध चान्द्रायण तथा अर्द्धार्द्ध अर्थात् चतुर्थांश चान्द्रायण व्रत करके शुद्धि को प्राप्त करते हैं। अर्थात् अन्त्यजों के उच्छिष्टांश का सेवन करके दूषित ब्राह्मण के शुद्धि की विधि चान्द्रायण व्रत, क्षत्रियों के शुद्धि की विधि अर्द्ध चान्द्रायण व्रत तथा वैश्यों की शुद्धि-विधि चतुर्थांश चान्द्रायण-व्रत का अनुष्ठान है।

विण्मूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्।
श्वकाकोच्छिष्टभोगे च प्राजापत्यविधिः स्मृतः।। १० ।।

प्रमाद वश या किसी भीषण विषमता की स्थिति में मल-मूत्र का भक्षण कर लेने पर ब्राह्मण को अपनी शुद्धि-हेतु तप्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिए तथा कुत्ते और कौए का जूठा भोजनादि करने पर ब्राह्मण की शुद्धि-हेतु प्राजापत्य व्रत का विधान किया गया है।

उच्छिष्टः स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः।
शुनः-कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभाण्डं तथैव च।। ११ ।।
पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यदमेध्यं कदाचन।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। १२ ।।

यदि कोई उच्छिष्ट ब्राह्मण अनायास बिना इच्छा के ही अर्थात् न चाहते हुए भी किसी कुत्ते, मुर्गे अथवा शूद्र या मदिरा-पात्र अर्थात् शराब के बर्तन का स्पर्श कर ले अथवा पक्षियों के बैठने के स्थान या पक्षी जिस पर बैठ गया है उस पदार्थादि को या अन्य किसी अपवित्र वस्तु को छू ले तो वह ब्राह्मण दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है।

वैश्येन च यदा स्पृष्टः उच्छिष्टेन कदाचन।
स्नानं जपञ्च त्रैकाल्यं दिनस्यान्ते विशुद्ध्यति।। १३।।

जब कभी किसी उच्छिष्ट अर्थात् जूठे हाथ-मुँह वाले वैश्य के द्वारा उपर्युक्त कुत्ता, मुर्गा, शूद्र, मदिरा-पात्र या अमेध्य वस्तु आदि का अनायास स्पर्श कर लिया गया हो तो तीन प्रहर स्नान एवं जप करके दिन के अन्त में उसकी शुद्धि होती है।

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन।
स्नात्वाऽऽचम्य विशुद्धः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।। १४।।

यदि कभी किसी उच्छिष्ट ब्राह्मण के द्वारा किसी ब्राह्मण का स्पर्श कर लिया जाये तो इसकी शुद्धि-हेतु आपस्तम्ब मुनि ने बताया है कि वह मात्र स्नान एवं आचमन करके ही शुद्धता को प्राप्त कर लेता है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः

(आपस्तम्बीय धर्मशास्त्र का पञ्चम अध्याय सम्पूर्ण)



अथ षष्ठोऽध्यायः[1]

नीलीवस्त्र-धारणे नीलीभक्षणे च प्रायश्चित्तम्

अथ[2] ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीली-वस्त्रस्य यो विधिः।
स्त्रीणां क्रीडार्थसम्भोगे शयनीये न दुष्यति।। १।।

इसके पश्चात् नीले-वर्ण के अथवा नीली (नील) से रंगे वस्त्रों को धारण करने की जो विहित परम्परा है उसका प्रवचन करूँगा। क्रीडा, संभोग तथा शयन के समय स्त्रियों का नीले-वस्त्र धारण करना दोषपूर्ण नहीं है। अथवा स्त्रियों के साथ क्रीडा अथवा सम्भोग करने और शयनार्थ उद्यत होने पर नीले-वस्त्र धारण करने में कोई दोष नहीं होता है।

पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति।। २।।

नीली आदि का पालन अर्थात् खेती करने, विक्रय अर्थात् बेचने तथा उसकी वृत्ति से जीविका चलाने से ब्राह्मण पतित हो जाता है और इससे पतित हुआ ब्राह्मण तीन कृच्छ्रों के पालन से शुद्धि को प्राप्त करता है।

स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात्।। ३।।

नीली-वस्त्र को धारण करने वाला ब्राह्मण जो स्नान, दान, तप, होम स्वाध्याय, पितृतर्पण तथा पञ्च महायज्ञ अपने नित्य कर्म के रूप में करता है उसके ये सभी कर्म नीली तो वस्त्र को धारण करने से निष्फल हो जाते हैं।

---

१. प्रस्तुत अध्याय के सभी श्लोक आङ्गिरस-स्मृति के श्लोक १२ से २४ तक यथावत् उपलब्ध हैं।

२. अत

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽङ्गेषु धारयेत्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। ४।।

जब कोई ब्राह्मण नीली से रंगे हुए किसी वस्त्र को अपने अङ्गों पर धारण करता है तो वह दोष युक्त हो जाने के कारण अहर्निश अर्थात् दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है।

रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित्।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति।। ५।।

नीली का रस यदि कभी किसी प्रकार रोम-छिद्रों के माध्यम से किसी ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश कर जाता है तो वह ब्राह्मण पतित हो जाता है और पूर्वोक्त तीन कृच्छ्रों का व्रत करके शुद्धि को प्राप्त करता है।

नीलीदारु यदा भिन्द्याद् ब्राह्मणस्य शरीरकम्।
शोणितं दृश्यते तत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।। ६।।

जब नीली की लकड़ी किसी ब्राह्मण के शरीर में इस प्रकार चुभ जाये कि ब्राह्मण के नीलीदारु-भेदित उस अङ्ग से रक्त निकल पड़े तो वह ब्राह्मण अपनी शुद्धि-हेतु चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करे।

नीलीमध्ये यदा गच्छेत् प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। ७।।

जब कोई ब्राह्मण प्रमाद वश या भूलकर गलती से किसी नीली-क्षेत्र के अन्दर चला जाये (तो भी वह पतित हो जाता है) तो एक दिन और एक रात का व्रत करके पञ्चगव्य के सेवन से वह ब्राह्मण शुद्ध होता है।

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। ८।।

नीली के रङ्ग से रञ्जित वस्त्र में बाँध कर जो अन्न लाया जाता है वह द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) के लिए भोजन करने योग्य नहीं होता है। अतः यदि कोई इसका सेवन कर ले तो उसे अपनी शुद्धि-हेतु चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

भक्षयेद् यश्च नीलीन्तु प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित्।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।। ९ ।।

जो ब्राह्मण प्रमाद वश कभी नीली का ही सेवन कर ले तो उसके शुद्धि-रूप प्रायश्चित्त-हेतु आपस्तम्ब मुनि ने बताया है कि उसकी शुद्धि भी चान्द्रायण-व्रत करने से होती है।

यावत्यां वापिता नीली तावती चाशुचिर्मही।
प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत्।। १० ।।

जितनी भूमि में नीली की बुवाई की जाती है उतनी भूमि अशुद्ध हो जाती है। उस पृथ्वी की यह अशुचिता बारह वर्षों तक रहती है, इसके पश्चात् ही वह पवित्र होती है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः[१]

(आपस्तम्बीय धर्मशास्त्र का षष्ठ अध्याय सम्पूर्ण)



१. प्रस्तुत अध्याय में प्रोक्त नीली (नील) की खेती के पर्याप्त प्रमाण भारतीय इतिहास में उपलब्ध हैं। निन्दित अखाद्य पदार्थ के रूप में अंग्रेजों के शासनकाल में इसकी खेती का सर्वत्र पर्याप्त प्रचलन था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कपास की भाँति फली के अन्दर नील पदार्थ पाया जाता था। सम्प्रति बहुप्रचलित नील का सम्बन्ध कदाचित् इसी नीली या नील से प्रतीत होता है।

अथ सप्तमोऽध्यायः

अन्त्यजादिस्पर्शे रजस्वलायाः, विवाहादिषु कन्याया रजोदर्शने प्रायश्चित्तम्

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते।
वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नाऽनिवृत्ते कथञ्चन।। १।।

रजस्वला अर्थात् ऋतुमती स्त्री का शुद्धि-स्नान चौथे दिन श्रेष्ठ बताया गया है। अत: रजस्वला स्त्री रजोदर्शन के चतुर्थ दिन ही स्नान करके शुद्ध मानी जाती है। रज से निवृत्त हो जाने पर ही अर्थात् रजस्राव बन्द हो जाने पर ही स्त्री सम्भोग के योग्य होती है, रज से निवृत्त न होने तक (चतुर्थ दिवस स्नान कर लेने पर भी) स्त्री किसी भी प्रकार से संसर्ग करने योग्य नहीं होती।

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते।
अशुद्धास्तु न तेनेह तासां वैकारिकं हि तत्।। २।।

रक्त-प्रदरादि रोगों के कारण स्त्रियों का जो रज अत्यधिक मात्रा में रजस्वला अवधि के अतिरिक्त दिनों में भी प्रवाहित होता रहता है, उस रज के विकार-जन्य होने के कारण उस रजप्रवर्तन से स्त्रियाँ अशुद्ध एवं अपवित्र नहीं होती हैं क्योंकि वह मासिक धर्म नहीं होता है।

साध्वाचारा न सा तावद्रजो यावत् प्रवर्तते।
वृत्ते रजसि साध्वी स्याद् गृहकर्मणि चैन्द्रिये।। ३।।

रजस्वला स्त्री में जब तक रज-प्रवृत्ति रहती है तब तक वह पवित्र या उत्तम कर्मों का सम्पादन करने योग्य नहीं होती है। रज से निवृत्त हो जाने पर ही वह साध्वी होकर उत्तम एवं पवित्र कार्यों, अन्य पाकादि घर के कार्यों तथा इन्द्रिय सुख अर्थात् सम्भोग आदि के लिए उपयुक्त होती है।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति।। ४।।

रज-प्रवर्तन के स्वाभाविक दिनों में रजस्वला स्त्री रजो-दर्शन के प्रथम दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिन के तुल्य अशुद्ध एवं अस्पृश्य कही गयी है। इस प्रकार वह रजोदर्शन के चौथे दिन (स्नानदि करके) शुद्ध होती है।

अन्त्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला।
अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्।। ५।।

किसी नीच जाति में उत्पन्न शूद्र-चाण्डाल आदि तथा अपनी जाति से बहिष्कृत अधम लोगों के द्वारा ऋतुकाल में स्पर्श कर लिये जाने पर उस रजस्वला को रजःप्रवर्तन के उक्त दिनों के पश्चात् अपनी शुद्धि-हेतु प्रायश्चित्त करना चाहिए।

त्रिरात्रमुपवासः स्यात् पञ्चगव्यं विशोधनम्।
निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकारञ्च कारयेत्।। ६।।

उपर्युक्त अन्त्याजाति द्वारा संस्पृष्ट रजस्वला स्त्री रजो-दर्शन के दिनों के पश्चात् तीन रात का उपवास करके पञ्चगव्य-सेवन से विशोधन को प्राप्त करती है। इस प्रकार तीन रात्रि के उपवास तथा पञ्चगव्य को शोधन के रूप में प्रयोग करके उसी अन्तिम रात्रि को विशुद्ध-योनि होकर सन्तान उत्पन्न करने वाले पति की कामना उसे करनी चाहिए। या शोधन के पश्चात् ही तृतीय रात्रि को उसकी योनि को सन्तति उत्पन्न करने के योग्य समझना चाहिए।

[1]रजस्वलाऽन्त्यजैः स्पृष्टा [2]शुना च श्वपचेन च।
त्रिरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। ७।।

इसी प्रकार अन्त्यजों के द्वारा, कुत्तों अथवा कुत्तों को खिलाने वाले अति नीच और पतित पुरुषों द्वारा छुई हुई रजस्वला को त्याग देना चाहिए अर्थात्

---

१. रजस्वलां त्यजेत्

२. स्पृष्टाम्

शुद्धि के बिना सम्भोग्या नहीं समझनी चाहिए। ऐसी स्त्री तीन रात्रि व्रत करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होती है।

प्रथमेऽहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहन्तथा।
तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात्।। ८।।

उपर्युक्त अन्त्यजों, कुत्तों और श्वपाक के द्वारा रजो दर्शन के पहले दिन स्पर्श कर लिये जाने पर छः रात्रि उपवास करके, दूसरे दिन स्पर्श की गयी रजस्वला तीन दिन तक उपवास करके, तीसरे दिन छुये जाने पर एक दिन का उपवास करके तथा चौथे दिन छुये जाने पर मात्र अग्नि का दर्शन करके रजस्वला स्त्री शुद्ध होती है।

विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा।
रजस्वला भवेत् कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत्।। ९।।

विवाह में, क्रियमाण यज्ञ कर्म के मध्य में तथा किसी संस्कार को करते समय बीच में ही यदि कोई स्त्री रजस्वला हो जाये तो किये जा रहे अनुष्ठान के शेष भाग को किस तरह सम्पन्न करना चाहिए?

स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलङ्कृताम्।
पुनः प्रत्याहुतिं[1] हुत्वा शेष-कर्म समाचरेत्।। १०।।

उपर्युक्त आपात् स्थिति में वस्त्रालङ्करणों से मण्डित कन्या को स्नान कराके पुनः अन्य वस्त्रों और आभूषणों से अलङ्कृत करके प्रत्याहुति अथवा मेध्य-आहुति से हवन करने के पश्चात् शेष कर्म को सम्पन्न करना चाहिए।

रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः।
सा त्रिरात्रोपवासेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। ११।।

प्लव अर्थात् मेंढक अथवा बन्दर के द्वारा, मुर्गे या कौए द्वारा स्पर्श की गयी रजस्वला स्त्री तन रात्रि के उपवास और पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होती है।

रजस्वला तु या नारी अन्योऽन्यं स्पृशते यदि।
तावत् तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति।। १२।।

---

१. मेध्याहुतिं

यदि कोई रजस्वला स्त्री किसी रजस्वला स्त्री द्वारा ही स्पर्श कर ली जाये तो उस समय से चतुर्थ दिवस-पर्यन्त उसे निराहार रहना चाहिए। इस प्रकार स्पर्श काल से चार दिन निराहार रहकर शुद्धि-स्नान के लिए विहित समय पर ही स्नान करके वह शुद्ध होती है।

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित् स्त्री रजस्वला।
कृच्छ्रेण शुद्ध्यते विप्रा अन्या दानेन शुद्ध्यति।। १३।।

यदि किसी समय कोई रजस्वला स्त्री किसी उच्छिष्ट अर्थात् जूठे हाथ-मुंह वाले व्यक्ति के द्वारा छू ली जाये तो ब्राह्मणी कृच्छ्र के द्वारा तथा अन्य वर्ण की रजस्वला दान करके शुद्ध होती है।

एकशाखासमारूढा चाण्डाला वा रजस्वला।
ब्राह्मणेन समं तत्र सवासा: स्नानमाचरेत्।। १४।।

यदि किसी वृक्ष की एक ही शाखा पर कोई चाण्डाल स्त्री तथा रजस्वला स्त्री आसीन हो तो रजस्वला स्त्री को अपनी शुद्धि-हेतु ब्राह्मण के समान वस्त्रों के साथ स्नान करना चाहिए।

रजस्वलाया: संस्पर्श: कथञ्चिज्जायते शुना।
रजोदिनानां यच्छेषं तदुपोष्य विशुद्ध्यति।। १५।।

यदि कभी किसी कुत्ते द्वारा किसी रजस्वला स्त्री का स्पर्श कर लिया जाये तो रजोदर्शन के स्वाभाविक दिवसों में जितने दिन शेष बचे हों उतने दिन उपवास करके वह रजस्वला शुद्ध होती है।

अशक्ता चोपवासेन[1] स्नानं पश्चात् समाचरेत्।
तत्राऽप्यशक्ता चैकेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति[2]।। १६।।

कुत्ते से स्पृष्ट रजस्वला यदि प्रायश्चित्त अथवा शुद्धीकरण के रूप में रजोदर्शन के शेष दिनों में व्रत कर सकने में असमर्थ हो तो वह मात्र स्नान कर ले। और यदि उस स्नान में भी असमर्थ हो तो अर्थात् इस स्नान मात्र में भी

---

१. चोपवासे तु
२. पञ्चगव्यं पिबेत्तत:

सक्षम न होने पर एक के मत से शुनस्पर्श के पश्चात् पञ्चगव्य के सेवन से ही शुद्धि हो जाती है।

उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम्।
मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत् कृच्छ्रं तदर्द्धन्तु रजस्वलाम्।। १७।।

यदि कोई उच्छिष्ट ब्राह्मण मदिरा अथवा रजस्वला स्त्री का स्पर्श कर ले तो वह अशुद्ध हो जाता है। अतः मदिरा का स्पर्श करने पर अशुद्ध ब्राह्मण को शुद्धि-हेतु कृच्छ्र तथा रजस्वला स्त्री का स्पर्श करने से अशुद्ध ब्राह्मण को शुद्धि-हेतु उसका आधा अर्थात् अर्द्धकृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए।

उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि।
कृच्छ्रार्द्धन्तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम्।। १८।।

यदि कोई उच्छिष्ट ब्राह्मण किसी रजस्वला स्त्री या किसी ऐसी नव प्रसूता का स्पर्श करले जिसने शिशु को जन्म दिया हो और प्रसूति गृह में ही रजस्राव आदि के कारण अशौचावस्था में हो तो उस ब्राह्मण को शुद्धि-हेतु अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना चाहिए (क्योंकि) यही अर्द्धकृच्छ्र रूप प्रायश्चित्त ही उसकी शुद्धि करने वाला होता है।

चाण्डालः श्वपचो वापि आत्रेयी स्पृशते यदि।[1]
शेषाहान् फालकृष्टेन पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। १९।।

यदि कोई रजस्वला स्त्री चाण्डालों अथवा श्वपचों द्वारा छू ली जाती है तो रजोदर्शन के शेष दिनों में वनों में हल से जुती हुई भूमि में उत्पन्न (किसान आदि के द्वारा छोड़े गये) व्रीह्यादि अन्न का सेवन करके पञ्चगव्य के सेवन से अथवा हल के फाल से आलोडित पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होती है।

उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। २०।।

यदि कोई रजस्वला ब्राह्मणी किसी रजस्वला शूद्रा का स्पर्श कर लेती है तो अहोरात्रि उपवास करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होती है।

---

१. चाण्डालैः श्वपचैर्वाऽपि आत्रेयी स्पृशते यदि

एवञ्च क्षत्रियां वैश्यां ब्राह्मणी चेद्रजस्वला।
सचैलप्लवनं कृत्वा दिनस्यान्ते घृतं पिबेत्।। २१।।

इसी प्रकार यदि कोई रजस्वला ब्राह्मणी किसी क्षत्रिय-वर्णोत्पन्ना रजस्वला स्त्री का अथवा वैश्या रजस्वला का स्पर्श कर लेती है तो उसकी शुद्धि-हेतु ब्राह्मणी रजस्वला को दिन के अन्त में जल में वस्त्रों-सहित डुबकी लगाकर स्नान करके घृत का पान करना चाहिए।

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते।
एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।। २२।।

किसी भी रजस्वला स्त्री के द्वारा अपने ही वर्ण की रजस्वला स्त्री का स्पर्श कर लिये जाने पर सद्यः स्नान अर्थात् अविलम्ब या तत्काल स्नान का विधान है। तुरन्त स्नान करके ही सवर्णा ऋतुमती का स्पर्श करने वाली स्त्री की शुद्धि हो जाती है ऐसा आपस्तम्ब मुनि ने बताया है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः

(आपस्तम्ब-धर्मशास्त्र का सप्तम अध्याय सम्पूर्ण)



अथ अष्टमोऽध्यायः

सुरादिदूषित-कांस्यशुद्धिविधानवर्णनम्

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते।
सुराविण्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यते तापलेखनैः।। १।।

काँसे या जस्ते का बना हुआ पात्र मदिरा से लिप्त या संस्पृष्ट न होने पर अन्य किसी सामान्य अशुद्धि की स्थिति में भस्म से शुद्ध हो जाता है। जबकि मदिरा एवं मल-मूत्र से सम्पृक्त पात्र तपाने और रितवाने से शुद्ध होता है।

गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु।
दशभस्मभिः शुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च।। २।।

× × × × × × × ×

शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्येन्दुरश्मिभिः।। ३।।

गाय के सूंघने अथवा गाय को भोजनादि कराने से जूंठे, शूद्रों द्वारा उच्छिष्ट अथवा छुए गये तथा कुत्तों और कौओं द्वारा अपवित्र किये गये कांस्यादि के बर्तन राख आदि क्षारीय पदार्थों से दस बार मांजे जाने पर शुद्ध होते हैं। सोना तथा नारियों की शुद्धि वायु के स्पर्श तथा सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से होती है क्योंकि वायु एवं सूर्य-चन्द्र की रश्मियाँ सर्वव्यापी एवं सर्वस्पर्शी हैं।

रेतस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकन्तु प्रदुष्यति।
अद्भिर्मृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति।। ४।।

वीर्य से लिप्त या स्पृष्ट तथा शव से छुआ गया ऊनी वस्त्र अपवित्र एवं दूषित हो जाता है। वीर्य एवं शव से स्पृष्ट ऊनी कपड़ा अशुद्धि के परिमाण-मात्र में मिट्टी अथवा जल से प्रक्षालित करने पर शुद्ध हो जाता है।

[१]शुष्कमन्नमविप्रस्य पञ्चरात्रेण जीर्य्यति।
अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्य्यति।।५।।

अब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मणेतर वर्ण के व्यक्तियों का सूखा अथवा शुद्ध अन्न आमाशय में पहुँच कर पाँच रात्रियों में पचता है जबकि विविध व्यञ्जनों से युक्त अन्न आधे मास में अर्थात् पन्द्रह दिनों में पचता है।

पयस्तु दधि मासेन षण्मासेन घृतं तथा।
संवत्सरेण तैलन्तु कोष्ठे जीर्य्यति वा न वा।।६।।

दूध और दही उदर में पहुँच कर एक मास में पचता है तथा घी छः महीने में पचता है। तैल तो आमाशय में पहुँच कर वर्ष भर में भी पच पाता है या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम्।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृताः शुनि।।७।।

जो व्यक्ति निरन्तर एक मास तक शूद्र के अन्न का सेवन करते हैं वे इस जन्म में तो शूद्रत्व को प्राप्त ही कर लेते हैं और मृत्यु के पश्चात् दूसरा जन्म लेने पर कुत्ते की योनि में उत्पन्न होते हैं।

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणैव सहासनम्।
शूद्रात्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत्।।८।।

शूद्रों का अन्न, शूद्रों का सम्पर्क, शूद्रों के साथ एक ही आसन पर बैठना तथा शूद्रों से किसी भी प्रकार के ज्ञान का उपार्जन किसी प्रतापी महिमाशाली एवं तेजस्वी अर्थात् जाज्ज्वल्यमान व्यक्ति को भी पतित कर देता है।

आहित्याग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते।
तथा तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः।।९।।

यज्ञ की पावन अग्नि को अभिमन्त्रित करके अथवा घर में अग्नि को स्थापित करके प्रतिदिन अग्निहोतृ करने वाले भी जो ब्राह्मण अग्नि का आधान

---

१. शुद्धमन्नम्

करके शूद्र के अन्न से विरत नहीं होता है अर्थात् शूद्र के अन्न पर आश्रित रहता है उसकी आत्मा, उसका ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मज्ञान या वेद तथा तीनों प्रकार की अग्नियाँ नष्ट हो जाती हैं।

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति।
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा ह्यन्नाच्छुक्रस्य सम्भवः।। १०।।

शूद्र के अन्न का भक्षण करने वाले के साथ अथवा शूद्र के अन्न का भक्षण करके जो व्यक्ति सन्तानोत्पत्ति की कामना से मैथुन करता है और इससे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह शूद्र ही होती है। अन्न से ही वीर्य की उत्पत्ति होने के कारण जिसका अन्न होता है उसी के वे पुत्र होते हैं।

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः।
स भवेच्छूकरो ग्राम्यो मृतः श्वा वाऽथ जायते[1] ।। ११।।

शूद्र के अन्न को उदर में धारण करके अर्थात् शूद्रान्न का भक्षण करके जो द्विज मृत्यु को प्राप्त करता है वह मर जाने पर पुनर्जन्म में या तो ग्राम्य-सुअर होता है अथवा कुत्ता होकर जन्म धारण करता है और या फिर उसी शूद्र के कुल में उत्पन्न होता है।

ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि।
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन।। १२।।

ब्राह्मण को ब्राह्मण के ही अन्न का सेवन सदैव करना चाहिए जबकि क्षत्रिय के अन्न का सेवन किसी पर्व-विशेष पर तथा वैश्य के अन्न का उपभोग यज्ञ एवं दीक्षा आदि के अवसर पर करना चाहिए तथा शूद्र के अन्न का ग्रहण कभी-भी नहीं करना चाहिए।

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम्।
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम्।। १३।।

ब्राह्मण का अन्न अमृत तथा क्षत्रिय का अन्न दूध माना जाता है जबकि वैश्य का अन्न, अन्न होता है तथा शूद्र का अन्न रुधिर अर्थात् रक्त माना गया है।

---

१. स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले

वैश्वदेवेन होमेन देवताऽभ्यर्चनैर्जपैः।
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुः-सामसंस्कृतम्।। १४।।

वैश्वदेव यज्ञ से, होम से, देवताओं के अभ्यर्चन एवं जपों के माध्यम से तथा ऋग्, यजुष् और साम-मन्त्रों से ब्राह्मणों का अन्न संस्कृत हुआ करता है, अतः ब्राह्मणों का अन्न अमृत होता है।

व्यवहारानुरूपेण धर्मेणाच्छलवर्जितम्।
क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम्।। १५।।

व्यवहार के अनुकूल, धर्म-सम्मत किसी भी प्रकार के छल के बिना अर्जित किया गया क्षत्रियों का अन्न समस्त प्राणियों का पालन करने वाला होता है, अतः क्षत्रियों का अन्न दूध होता है।

स्वकर्म्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्यशक्तितः।
खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नं तेन संस्कृतम्।। १६।।

अपने कर्म के द्वारा बैलों की शक्ति के अनुरूप बैलों से कर्षणादि काम लेकर उसी के अनुसार स्वयं भी परिश्रम करके अर्जित किया गया वैश्यों का अन्न खलिहान, यज्ञ तथा आतिथ्य से पवित्र किया जाता है, अतः वैश्यों का अन्न भी संस्कृत अर्थात् शुद्ध (अन्नरूप) होता है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य मद्यपानरतस्य च।
रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमन्त्रविवर्जितम्।। १७।।

अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे और मदिरा-पान में रत रहने के कारण उन्मत्त शूद्रों का अन्न शास्त्रीय विधि-विधान और मन्त्रों के परिष्कार से रहित होता है, अतः वह रुधिर होता है।

आममांसं मधु-घृतं धानाः क्षीरं तथैव च।
गुडं तक्रं समं ग्राह्या निवृत्तेनाऽपि शूद्रतः।। १८।।

कच्चा मांस, शहद-घी, धान अथवा सत्तू, दूध, एवं गुड़ तथा मट्ठा आदि पदार्थ लोक से निवृत्त अर्थात् संन्यासी आदि व्यक्तियों को भी अन्यों के समान शूद्रों से भी ले लेनी चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं होता है।

शाकं मासं मृणालानि तुम्बुरुः सक्तवस्तिलाः।
रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः।। १९।।

शाक, मांस, मृणाल अर्थात् सुगन्धित घास की जड़े या कमल-नाल अर्थात् भींसे, तुम्बुरु, सत्तू, तिल, रस, फल एवं पिण्याक अर्थात् खली या गन्ध-द्रव्य-केशर, हींग आदि वस्तुएँ सभी वर्णों के व्यक्तियों (यहाँ तक कि शुद्र से भी) ग्रहण कर लेने योग्य होती हैं।

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।
मनस्तापेन शुद्ध्येत दुपदां वा शतं जपेत्।। २०।।

यदि किसी आपत्तिकाल में या विपज्जन्य अपरिहार्य परिस्थिति में किसी ब्राह्मण के द्वारा किसी शूद्र के घर में भोजन कर लिया जाता है तो मनस्ताप अर्थात् मानसिक पश्चाताप करने से ही उसकी शुद्धि हो जाती है। अतः उसे मन में पश्चाताप करना चाहिए अथवा अपनी शुद्धि एवं प्रायश्चित्त-हेतु द्रुपद मन्त्र का सौ बार अर्थात् एक माला जप करना चाहिए।

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित्।
तद् द्विजेन न भोक्तव्यमापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः।। २१।।

यदि खाद्य-पदार्थ हाथ में लिये हुए ब्राह्मण को किसी उच्छिष्ट शूद्र द्वारा छू लिया गया हो तो उस ब्राह्मण को हाथ में लिये गये उस पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए, ऐसा आपस्तम्ब मुनि ने बताया है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः

(आपस्तम्ब-धर्मशास्त्र का अष्टम अध्याय सम्पूर्ण)



नवमोऽध्यायः

अपेयपानेऽभक्ष्यभक्षणे च प्रायश्चित्तवर्णनम्

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् स्त्रवते गुदम्।
उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।। १।।

यदि कभी किसी भोजन कर रहे ब्राह्मण को भोजन करते समय ही गुदा-स्त्राव अर्थात् दस्त हो जाये तो उस उच्छिष्ट-स्थिति में हुई अशुचिता से शुद्धि एवं प्रायश्चित्त-हेतु वह उच्छिष्ट और अपवित्र ब्राह्मण क्या करे, यह बताया जा रहा है।

पूर्वं शौचन्तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। २।।

भोजन करते समय मल-स्त्रवण हो जाने की स्थिति में उस उच्छिष्ट और अपवित्र ब्राह्मण को सर्व प्रथम शौच से निवृत्त होकर बाद में उपस्पर्शन अर्थात् आचमनादि शुद्धि की क्रियाएँ करनी चाहिए। इसके पश्चात् एक दिन-रात्रि का उपवास करके पञ्चगव्य के सेवन से उसकी शुद्धि होती है।

अशित्वा सर्वमेवाऽन्नमकृत्वा शौचमात्मनः।
मोहाद् भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु यवान् पीत्वा विशुद्ध्यति।। ३।।

यदि भोजन करते समय मोह अर्थात् अज्ञान-वश गुदा-स्त्रवण हो जाने पर (शौच किये बिना ही) सम्पूर्ण अन्न का सेवन करके ही ब्राह्मण उठता है और बाद में उसे अशौच का ज्ञान होता है तो तीन-रात्रि पर्यन्त मात्र जौ का आटा पीकर प्रायश्चित्त करने से वह शुद्ध होता है।

प्रसृतं यवशाल्येन पलमेकन्तु सर्पिषा।
पलानि पञ्च गौमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत्।। ४।।

उपर्युक्त प्रायश्चित्त हेतु एक प्रसृत अर्थात् दो पल जौ के अन्न के साथ एक पल पिघले घी में पाँच-पल गो-मूत्र मिलाकर पान करने का विधान भी प्राप्त होता है। शुद्धि के इस विकल्प को अपनाने की स्थिति में उपर्युक्त पदार्थों का सेवन यथोक्त मात्रा से अधिक नहीं करना चाहिए।

अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणाञ्च भक्षणे।
रेतो मूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।। ५।।

अलेह्य अर्थात् न चाटने योग्य, अपेय अर्थात् पान न करने योग्य, अभक्ष्य अर्थात् भक्षण के अयोग्य पदार्थों का सेवन करके तथा वीर्य, मूत्र और मल को जान या अनजान में खा लेने पर शोधन एवं प्रायश्चित्त किस प्रकार किया जाता है? अब यह निर्दिष्ट किया जा रहा है।

पद्मोदुम्बरबिल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशका:।
एतेषामुदकं पीत्वा षड् रात्रेण विशुद्ध्यति।। ६।।

कमल, गूलर, बेल, कुश, पीपल तथा पलाश अर्थात् ढाक के रस का पान करके उपर्युक्त अपेय एवं अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करके अशुद्ध हुआ व्यक्ति छः रात्रि में भलीभाँति शुद्ध हो जाता है।

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्याग्निजलादिषु।
अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षतः।। ७।।
जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारभागिनः।
तेषां सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा[१] ।। ८।।

जो ब्राह्मण प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास, अग्नि और जलादि में जाकर भी उपवास आदि तपश्चर्याओं का परित्याग करके पुनः गृहस्थाश्रम का भोग करने के इच्छुक हो जाते हैं वे प्रायश्चित्त के रूप में सभी जातकर्म आदि के द्वारा पुनः संस्कार के भागी हैं अर्थात् उनके प्रायश्चित्त के रूप में उनके सभी जातकर्मादि संस्कार पुनः करने चाहिए। साथ ही उनके लिए सान्तपन कृच्छ्र तथा चान्द्रायण व्रत करने का भी विधान है। पाठभेद के अनुसार ये दोनों त्रिगुणित मात्रा में करने चाहिए।

---

१. चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वा।

यद्वेष्टितं काकबलाकचिल्लैरमेध्यलिप्तञ्च भवेच्छरीरम्।
श्रोत्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक् स्नानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः।। ९।।

कौआ, बगुला और चील जिसके शरीर का स्पर्श कर लें अथवा कोई अमेध्य अर्थात् अननुमत अपवित्र पदार्थ या विष्टा आदि से शरीर लिप्त हो जाय अथवा यह विष्टा आदि पदार्थ कान और मुख में प्रवेश कर जाये तो इस वेष्टन अथवा लेप-जन्य अशुद्धि से अपवित्र हुए व्यक्ति की शुद्धि भली प्रकार स्नान करने से होती है।

उर्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदङ्गमुपहन्यते।
उर्ध्वं स्नानमधः शौचमात्रेणैव विशुद्ध्यति।। १०।।

हाथों को छोड़कर नाभि के ऊपर का जो अङ्ग कलुषित या अपवित्र हो जाता है उसके भली भाँति प्रक्षालन के साथ स्नान करने से शुद्धि होती है। (हाथ की शुद्धि मार्जन मात्र से हो जाती है) तथा नाभि से अधोभाग यदि किसी अमेध्य वस्तु से अपवित्र हो जाये तो उसकी शुद्धि शौच अर्थात् मार्जन मात्र से हो जाती है।

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम्।
मृत्तिकाशोधनं स्नानं पञ्चगव्यं विशोधनम्।। ११।।

उपानह अर्थात् जूते-चप्पल आदि पादत्राण अथवा कोई अमेध्य अर्थात् अपवित्र पदार्थ जिसके मुख से छू जाये तो उसकी शुद्धि के साधन मृत्तिका-शोधन अर्थात् मिट्टी से शुद्धीकरण, स्नान और पञ्चगव्य का सेवन आदि होते हैं।

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु।
षड्भिस्त्रिभिरथैकैन क्षत्रविट् शूद्रयोनिषु।। १२।।

अपने कुल के किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर होने वाले अशौच से ब्राह्मण दस दिन में शुद्ध होता है जबकि क्षत्रिय छः दिन में, वैश्य तीन दिन में तथा शूद्र एक दिन में शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है।

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम्।
प्रमीतवत्[1] समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत्।। १३।।

भोजन करने के लिए प्रस्तुत किसी व्यक्ति के समक्ष भोजनार्थ प्रस्तुत किया गया अन्न यदि उसके द्वारा त्याग दिया जाये अर्थात् न खाया जाये तो वह न खाया गया भोजन (उच्छिष्ट न होने पर भी) मरे हुए पशु के समान हो जाता है। अतः उसे न तो किसी को खाने के लिए देना चाहिए और न ही उससे होम आदि करना चाहिए।

अन्ने भोजनसम्पन्ने मक्षिकाकेशदूषिते
अनन्तरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत्।। १४।।

उपभोग के लिए तैयार अन्न अर्थात् पकाकर प्रस्तुत किये गये भोजन या अन्य किसी खाद्य-पदार्थ में मक्खी अथवा बाल गिरने से जो दोष आ जाता है उसकी शुद्धि-हेतु उस मक्खी अथवा बाल को निकालने के पश्चात् जल का स्पर्श करके आचमन करे तथा अन्न को भस्म से छुआवे।

शुश्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाऽप्यकामतः।
भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात् कृच्छ्रत्रयं चरेत्।। १५।।

सूखे माँस से युक्त अथवा शूद्र के घर के भोजन का अनायास अर्थात् न चाहते हुए भी अज्ञान-वश यदि सेवन कर लिया गया हो तो प्रायश्चित्त-हेतु कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। यदि उपर्युक्त मांसान्न या शूद्रान्न को जान-बूझ कर सञ्ज्ञानपूर्वक खाया गया हो तो तीन गुना प्रायश्चित्त अर्थात् तीन-कृच्छ्र का अनुष्ठान करना चाहिए।

अभुक्ते मुञ्चते यश्च भुञ्जन् यश्चापि मुच्यते।
भोक्ता च मोचकश्चैव[2] पङ्क्त्या गच्छति दुष्कृतम्।। १६।।

भोजन करते समय जो व्यक्ति बीच में ही पूर्ण रूपेण खाये बिना भोजन को छोड़ देता है तथा जो स्वयं तो खाना चाहता है परन्तु खिलाने वाले या अन्य

---

१. अपीतवत्।
२. भोजकश्चैव।

किसी के द्वारा भोजन छुड़वा लिया जाता है, तो बिना खाये बीच में ही भोजन को छोड़ देने वाला वह भोक्ता तथा भोजन छुड़वा लेने वाला वह भोजक अथवा अन्य कोई मोचक-व्यक्ति दोनों ही पङ्क्तिच्युत दोष से युक्त होकर पाप को प्राप्त करते हैं।

यश्च भुङ्क्ते तु भुक्तं वा दुष्टं वाऽपि विशेषतः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। १७।।

जो खाये हुए भोजन अर्थात् किसी के द्वारा उपभुक्त खाद्य-पदार्थ के शेषांश का उपभोग करता है अथवा विशेष रूप से दोषपूर्ण अन्न का सेवन करता है वह अहर्निश उपवास करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्धि को प्राप्त करता है।

उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः।
पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतः शुचिः।। १८।।

जल में स्थित व्यक्ति की शुचिता (पवित्रता) जल में तथा स्थल पर स्थित व्यक्ति की शुचिता स्थल पर होती है। जल और भूमि दोनों ही स्थानों पर पैर स्थापित करके दोनों ही पक्षों से आचमन करने पर दोनों ही स्थलों पर शुद्ध हो जाता है।

उत्तीर्याचम्य उदकादवतीर्य उपस्पृशेत्।
एवन्तु श्रेयसा युक्तो वरुणेनाऽभिपूज्यते।। १९।।

स्थल पर स्थित मनुष्य जल में उतर कर अर्थात् प्रवेश कर के आचमन करे तथा जल में स्थित मनुष्य को जल से बाहर निकलने पर पुनः आचमन करना चाहिए। इस प्रकार करने से व्यक्ति कल्याण से युक्त होकर वरुण के द्वारा भी पूजा जाता है।

अग्न्यागांरे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ।
स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम्।। २०।।

अग्नि के घर में अर्थात् गृह्याग्नि-मण्डप अथवा यज्ञशाला में, गायों के गोष्ठ अर्थात् गोशाला में और ब्राह्मणों के पास जाने पर तथा स्वाध्याय और

भोजन करते समय चरण-पादुकाओं अर्थात् जूता, चप्पल, खड़ाऊ आदि पादत्राणों को उतार देना चाहिए।

जन्मप्रभृतिसंस्कारे श्मशानान्ते च भोजनम्।
असपिण्डैर्न कर्तव्यं चूड़ाकार्ये विशेषतः।। २१।।

जातकर्म आदि संस्कारों से लेकर श्मशान-पर्यन्त होने वाले अन्त्येष्टि आदि संस्कारों में अथवा जन्म-सम्बद्ध जातकर्म-नामकरण, निष्क्रमणादि संस्कारों तथा श्मशानान्त मृतक संस्कार में, विशेष कर चूड़ाकरण अर्थात् मुण्डन संस्कार में पितरों को समान रूप से पिण्डदान करने वाले सपिण्ड बन्धुओं अर्थात् वंशजों के अतिरिक्त और किसी के साथ भोजन नहीं करना चाहिए।

याजकान्नं नवश्राद्धं सङ्ग्रहे चैव भोजनम्।
स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। २२।।

याजक के अन्न को खाकर, नवीन श्राद्ध अर्थात् एकादशाह-श्राद्ध के अन्न को खाकर, ग्रहशान्ति कृत्य में खिलाये जाने वाले अन्न को खाकर तथा स्त्री के प्रथम गर्भ अर्थात् प्रथम गर्भाधान-संस्कार में भोजन का सेवन करके दूषित ब्राह्मण को शुद्धि-हेतु चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

ब्रह्मौदने[1] च श्राद्धे च सीमन्तोन्नयने तथा।
अन्न-श्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। २३।।

ब्रह्मौदन अर्थात् उपनयन संस्कार में पकाये जाने वाले भात के भोज में भोजन करके, अवसान अर्थात् मृत्यु होने पर दिये जाने वाले भोज में भोजन करके, श्राद्ध एवं सीमन्तोन्नयन संस्कार तथा अन्न श्राद्ध और मृतक श्राद्ध में भोजन करके (होने वाले दोष-परिमार्जन-हेतु प्रायश्चित्त के रूप में भी) चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्नीयादेव तद् गृहे।
अथ भुञ्जीथ मोहाद् यः पूयं स[2] नरकं व्रजेत्।। २४।।

---

१. ब्रह्मौदनेऽवसाने

२. पूयसं

जो नारी सन्तान-रहित हो उसके घर में कभी-भी भोजन नहीं करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अज्ञान या प्रमाद वश किसी निःसन्तान स्त्री के घर भोजन कर लेता है तो वह मवाद से पूर्ण पूय या पूयस सञ्ज्ञक नरक को प्राप्त करता है।

अल्पेनाऽपि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः।
रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते।। २५।।

जो पिता वर पक्ष से थोड़ा सा भी शुल्क लेकर कन्या-मूल्य पूर्वक अपनी कन्या प्रदान करता है वह बहुत वर्षों तक रौरव नरक में पड़ा रहकर मल एवं मूत्र का भक्षण करता है।

स्त्रीधनानि च ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यान्त्यधोगतिम्।। २६।।

मोह अर्थात् मूर्खता वश जो मनुष्य स्त्री के धन पर आश्रित रहकर जीवन- यापन करते हैं अथवा उसके स्वर्ण, यान और वस्त्रों का उपभोग करते हैं, वे पाप के भागी होकर अधोगति को प्राप्त करते हैं।

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्।
असंस्कृतन्तु यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम्।। २७।।

राजा का अन्न तेज अथवा ओज का हरण कर लेता है, शूद्र का अन्न (खाने वाले के) ब्रह्मतेज को हर लेता है, जो व्यक्ति असंस्कृत (अपवित्र) भोजन का सेवन करता है वह मानों पृथ्वी के मल को खाता है।

मृतके सूतके चैव गृहीते शशिभास्करे।
हस्तिच्छायान्तु यो भुङ्क्ते पापः स पुरुषो भवेत्।। २८।।

मृतक-सूतक अर्थात् मृत्यु हो जाने पर विहित अशौच के दिनों में, जन्म-सूतक अर्थात् वृद्धि-सूतक अर्थात् प्रसव-जन्य अशौच के दिनों में तथा चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण-काल में और गजच्छाया (कृष्ण-पक्ष की त्रयोदशी को जब सूर्य हस्त नक्षत्र पर हो और चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर हो तो ऐसे 'गजच्छाया' योग) में जो मनुष्य भोजन करता है वह पापी होता है।

पुनर्भूः[१] पुनरेता च रेतोधा कामचारिणी।
आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। २९।।

पुनर्विवाह करके सौभाग्यवती बनी विधवा स्त्री, एक पुरुष के वीर्य धारण पश्चात् पुनः दूसरे पुरुषों से वीर्य धारण करके गर्भ धारण करने वाली स्वेच्छाचारिणी स्त्रियों के प्रथम गर्भ या गर्भाधान संस्कार में भोजन करने से होने वाली अशुद्धि के निवारण-हेतु चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए।

मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः।
विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। ३०।।

माता की हत्या करने वाले, पिता की हत्या करने वाले, ब्राह्मण की हत्या करने वाले तथा गुरु की पत्नी या अपनी सौतेली माँ से व्यभिचार करने वाले व्यक्ति महापापी होते हैं। अतः इन व्यक्तियों के यहाँ विशेष रूप से भोजन कर लेने पर शुद्धि-हेतु चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्।
भुक्त्वैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।। ३१।।

धोबी, बहेलिया, नट अर्थात् नर्तक के घर या नाच-गाना करके अपनी आजीविका चलाने वाले तथा बाँस और चमड़े के कार्य से जीविकोपार्जन करने वाले व्यक्तियों के यहाँ अन्न का भोजन करने वाले ब्राह्मण की शुद्धि (भी) चान्द्रायण व्रत करने से होती है।

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते।
सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत्।। ३२।।

यदि कभी किसी समय अपने ही वर्ण के किसी उच्छिष्ट मनुष्य से छूकर कोई मनुष्य उच्छिष्ट अर्थात् अपवित्र हो जाये तो उठकर मुख-परिमार्जन पूर्वक आचमन-मार्जन करके उसकी शुद्धि होती है।

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।। ३३।।

---

१. पुनर्धूः

किसी उच्छिष्ट के छूने से उच्छिष्ट अर्थात् अपवित्र हुआ ब्राह्मण व्यक्ति किसी कुत्ते अथवा शूद्र द्वारा स्पृष्ट होकर अपवित्र हो जाये तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है।

ब्राह्मणस्य सदाकालं शूद्रे प्रेषणकारिणः।
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः।। ३४।।

शूद्र के लिए सन्देश-वाहक अर्थात् दूत आदि के रूप में दास-कर्म करने वाले ब्राह्मण को सदैव भूमि पर भोजन देना चाहिए क्योंकि वह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार एक कुत्ता होता है।

अनूदकेष्वरण्येषु चौरव्याघ्राकुले पथि।
कृत्वा मूत्रं पुरीषञ्च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः।। ३५।।

जल-रहित जंगलों में तथा चोरों और व्याघ्रादि हिंसक पशुओं से आक्रान्त मार्ग में भोजन आदि खाद्य-पदार्थों को हाथ में लिये हुए व्यक्ति जा रहा हो और उसे मल-मूत्रोत्सर्जन करना हो तो वह कैसे करे? तथा उसकी शुद्धि कैसे हो? यह बताया जा रहा है-

भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः।
उत्सङ्गे गृह्य पक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः।। ३६।।

अन्न को भूमि पर स्थापित करके समुचित रूप से शौच करना चाहिए। शौच के पश्चात् उस अन्न को हाथ से न उठाकर उत्संग अर्थात् गोद, कूल्हे या शरीर के ऊपरी भाग में सावधानी पूर्वक धारण करके सुविधा मिलने पर उपस्पर्शन करके व्यक्ति की शुद्धि होती है।

मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः।
मोहाद् भुक्त्वा त्रिरात्रन्तु गव्यं पीत्वा विशुद्धयति।। ३७।।

मल-मूत्र का उत्सर्ग करके यदि कोई द्विज शौच आदि शुद्धि की क्रियाएँ किये बिना ही अज्ञान से भोजन कर लेता है तो इससे अपवित्र हुआ ब्राह्मण तीन रात तक पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है।

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः।
चान्द्रायणेन शुद्धयेत् ब्राह्मणानाञ्च भोजनैः।। ३८।।

यदि कोई ब्राह्मण कामासक्ति से मदोन्मत्त होकर रजस्वला स्त्री से सम्भोग कर ले तो वह चान्द्रायण-व्रत के अनुष्ठान तथा ब्राह्मणों को भोजन कराने से शुद्धि को प्राप्त करता है।

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचान्तश्चाण्डालैः श्वपचेन वा।
प्रमादाद् यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।। ३९।।

स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः।
स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति।। ४०।।

यदि ज्ञान में दुर्बल कोई अज्ञानी ब्राह्मण अपने अज्ञान-वश उच्छिष्टावस्था में मुख-मार्जन एवं हस्तप्रक्षालनादि किये बिना ही किसी चाण्डाल अथवा श्वपच के द्वारा छू लिया गया हो तो वह नित्य प्रातः, सायं एवं मध्याह्न काल में स्नान करके ब्रह्मचर्य-पालन-पूर्वक भू-शयन के साथ सोमसवनपूर्वक त्रिकालोपासना करता हुआ तीन रात्रि का व्रत करके पञ्चगव्य के सेवन से शुद्ध होता है।

चाण्डालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुद्धयति।। ४१।।

चाण्डाल के द्वारा स्पर्श किया गया जो ब्राह्मण शुद्धि के बिना जल का पान कर लेता है वह अहर्निश उपवास करके त्रिषवण के अनुष्ठान से अथवा तीन सवनों में सोमरस का सेवन करके (सोमपान करने से) शुद्ध होता है।

सायं प्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः।
सायं प्रातस्तथैवेकं दिनद्वयमयाचितम्।। ४२।।

दिनद्वयञ्च नाश्नीयात् कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते।
प्रायश्चित्तं लघु ह्येतत् पापेषु तु यथाऽहतः।। ४३।।

दिन-रात में मात्र प्रातः काल तथा सायंकाल ही जिसमें भोजन किया जाता है वह कृच्छ्र का पाद अर्थात् एक चतुर्थांश होता है। जबकि एक दिन

सायं और प्रातः भोजन करके अगले दो दिन बिना मांगे उपलब्ध सामग्री मात्र का सेवन करते हुए फिर दो दिन भोजन न करने से जो व्रत सम्पन्न होता है उसे अर्द्धकृच्छ्र की सञ्ज्ञा से विहित किया जाता है। यह पादकृच्छ्र एवं अर्द्धकृच्छ्र रूप व्रत छोटे पापों से मुक्ति हेतु यथायोग्य प्रायश्चित्त कहे गये हैं।

कृष्णाजिन-तिलग्राही हस्त्यश्वानाञ्च विक्रयी।
प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्।। ४४।।

काले मृगचर्म अर्थात् काले हिरन की खाल तथा तिल को दान में ग्रहण करने वाला व्यक्ति तथा हाथी-घोड़ो का विक्रय करने वाला व्यक्ति और प्रेतों का निर्यात करने वाला अर्थात् शवों को ढोने वाला व्यक्ति पुनर्जन्म धारण करने पर पुरुष नहीं बनता है।

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः

(आपस्तम्ब-धर्मशास्त्र का नवाँ अध्याय सम्पूर्ण)



अथ दशमोऽध्यायः

मोक्षाधिकारिणामभिधानवर्णनम्

आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद् यावन्नोद्ध्रियते जलम्।
उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद् यावद् भूमिर्न लिप्यते।। १।।

भूमावपि च लिप्तायां तावत् स्यादशुचिः पुमान्।
आसनादुत्थितस्तस्माद् यावन्नाऽऽक्रमते महीम्।। २।।

आचमन अर्थात् आस्य-परिक्षालनादि-पूर्वक शुद्धि कर लेने पर भी मनुष्य तब तक अशुद्ध एवं अपवित्र रहता है जब तक वह जल को उद्धृत नहीं करता है अर्थात् कुल्ला आदि किये गये भूमिस्थ जल को उठाकर अन्यत्र नहीं फेंक देता है। जल को उद्धृत करने पर भी वह तब तक शुद्ध नहीं होता है जब तक उस भूमि का गोमय आदि से लेपन नहीं किया जाता है, और भूमि को गोमयादि से लीप देने पर भी वह मनुष्य तब तक अपवित्र रहता है जब तक वह उस पूर्व-आसन से उठकर उस लिप्त भूमि पर पदक्रमण नहीं करता है।

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते।
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति।। ३।।

यमराज को यम नहीं कहते प्रत्युत् आत्मा को ही वस्तुतः यम सञ्ज्ञा से अभिहित किया जाता है। अतः जिस व्यक्ति के द्वारा अपनी आत्मा को संयमित कर लिया जाता है उसका मृत्यु का देवता यम क्या अनिष्ट कर सकता है अर्थात् कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता है। अतः आत्मा को जानकर उसे संयमित रखने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है।

न तथाऽसिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः।
यथा क्रोधो हि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः।। ४।।

कोई भी तलवार इतनी तीक्ष्ण एवं विनाशकारी नहीं होती तथा बाँमी में स्थित क्रियान्वित किया गया विषधर भयंकर सर्प भी इतना तीक्ष्ण एवं विनाशक नहीं होता है जितना तीक्ष्ण और विनाशक जन्तुओं अर्थात् मनुष्य आदि के शरीर में ही रहने वाला उसका क्रोध होता है।

क्षमा गुणो हि जन्तूनामिहामुत्र सुखप्रदः।
अरिर्वानित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मादुरधिष्ठितः।। ५।।

क्षमा प्राणियों का एक ऐसा अद्भुत गुण है जो इस लोक में तथा परलोक में भी सुख प्रदान करने वाला है, अपने क्रोध को ही जो वश में नहीं रख पाता सदैव क्रुद्ध रहने वाला वही व्यक्ति आत्मा का या अपना परम शत्रु होता है।

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः।। ६।।

क्षमावान् लोगों में इस एक दोष के अतिरिक्त कोई दूसरा दोष नहीं होता है कि क्षमा से युक्त इन मनुष्यों को लोग शक्तिहीन, असक्षम या दुर्बल मानते हैं, परन्तु यह उनका अज्ञान मात्र है।

न शक्ति[१]-शास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य।। ७।।
मोक्षो भवेत् प्रीतिनिवर्त्तकस्य अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यक्।
मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य स्वाध्याययोगागतमानसस्य।। ८।।

शक्ति और शास्त्र अर्थात् शस्त्र और शास्त्र अथवा शब्द-शास्त्र अर्थात् व्याकरण में रमण करने वाले व्यक्तियों को मोक्ष नहीं मिलता है और न ही सुन्दर और आकर्षक आवस-स्थलों यथा भव्य-प्रासादादि से प्रेम करने वाले व्यक्तियों को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। सदैव भोजन एवं वस्त्रों की व्यवस्था में तत्पर रहने वाले व्यक्ति को भी संसार के आवागमन से छुटकारा नहीं प्राप्त होता है। मोक्ष तो केवल एकान्त-वासी और दृढ़व्रत वाले ऐसे व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है जो सांसारिक प्रीति अर्थात् संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति अपनी

---

१. शब्द

आसक्ति एवं प्रीति को समाप्त कर चुका है और मात्र अध्यात्म-योग में भलीभाँति रत रहने वाला है। इसके साथ ही नित्य अहिंसक अर्थात् कभी-भी किसी प्रकार की हिंसा न करने वाले ऐसे व्यक्तियों को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है जिनके मन में स्वाध्याय और योग का भलीभाँति उद्‌गम हो चुका हो अर्थात् जो स्वाध्याय और योग में आसक्त मन वाले हैं उन्हीं को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोधयुक्तो यद् यजते यज्जुहोति यदर्च्चति।
सर्वं हरति दत्तस्य आमकुम्भ इवोदकम्।। ९।।

क्रोध से युक्त होकर व्यक्ति जो यजन करता है, जो आहुति देता है तथा जो देवार्चन करता है उन सबसे प्राप्त होने वाले फल को उसका क्रोध उसी प्रकार हर लेता है अथवा उसके क्रोध से सब कुछ उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार कच्ची मिट्टी के घड़े को जल नष्ट कर देता है या जैसे कच्चे घड़े में स्थित जल नष्ट हो जाता है।

अपमानात्तपो वृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः।
अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति।। १०।।

अपमान से तपस्या की वृद्धि तथा सम्मान से तपस्या का क्षय होता है अतः अर्चित और पूजित ब्राह्मण दूध देने वाली गाय की भाँति दुःखी होता है।

आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसम्भवैः।
एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः।। ११।।

जिस प्रकार गाय अमृत अर्थात् जल से उत्पन्न होने वाले घास-तृणादि के सेवन से सन्तुष्ट एवं सन्तृप्त होकर पुनः दूध से पूरित हो जाती है उसी प्रकार ब्राह्मण जपों और होमों से समृद्धि को प्राप्त करके पुनः पूर्ण हो जाता है अर्थात् उन्नति को प्राप्त करता है और लोक-कल्याण का पात्र बनता है।

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति।। १२।।

जो मनुष्य दूसरे की स्त्रियों को सर्वदा माता के समान, दूसरे की वस्तुओं को मिट्टी के ढेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है, वही वस्तुत: ठीक से देखता है अथवा सम्यग् रूपेण देखना जानता है।

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्।
यो भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां[1] प्राजापत्यं विशोधनम्।। १३।।

धोबी, बहेलिये, नट अर्थात् नर्तक अथवा गाना-बजाना करके अपनी जीविका चलाने वाले व्यक्तियों और बाँस तथा चमड़े के कार्य से उपार्जित धन पर आश्रित व्यक्तियों के अन्न को अथवा उपर्युक्त व्यक्तियों द्वारा उपभुक्त अन्न को जो व्यक्ति खाता है उसका विशोधन प्राजापत्य व्रत करने से होता है।

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम्।
शुद्धिं चान्द्रायणं कृत्वा अथर्वोक्तं तथैव च।। १४।।

सहवास न करने योग्य अर्थात् संभोग के अयोग्य स्त्री के साथ सहवास अर्थात् रति-क्रिया करके तथा भक्षण न करने योग्य पदार्थों का भक्षण करके अपवित्र हुए व्यक्ति को चान्द्रायण-व्रत करके अथर्वोक्त अर्थात् अथर्ववेद में बताये गये अथवा अथर्वा ऋषि द्वारा बताये गये प्रायश्चित्त-विधान को करना चाहिए।

अग्निहोत्रं त्यजेद् यस्तु स नरो वीरहा भवेत्।
तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चान्द्रायणादृते।। १५।।

जो व्यक्ति अग्निहोत्र-कर्म का त्याग कर देता है अर्थात् जो प्रतिदिन अग्निहोत्र नहीं करता है वह अपने पुत्रों की हत्या करने वाला होता है ऐसे सन्तति-हन्ता-व्यक्ति की शुद्धि चान्द्रायण-व्रत के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से नहीं हो सकती है।

विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके।
सद्यः शुद्धिं विजानीयात् पूर्वं सङ्कल्पितं चरेत्।। १६।।

विवाह, उत्सव और यज्ञ के मध्य यदि वृद्धि-सूतक या क्षय-सूतक हो

१. भुक्तमेतेषां

जाय अर्थात् किसी के जन्म या मरण होने से अशौच हो जाये तो सद्यः शुद्धि का विधान है। अतः तत्काल शुद्धि मानकर पूर्व से निश्चित सङ्कल्प करके प्रारम्भ किये गये यज्ञादि अनुष्ठान को यथावत् सम्पन्न करना चाहिए।

देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रतरेषु[1] च।
कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाऽशौचं मृतसूतके।। १७।।

देव-द्रोणी अर्थात् तीर्थ अथवा देवमूर्त्ति-यात्रा में, विवाह में और सम्पद्यमान यज्ञ के अवसरों पर बना हुआ भोजन जन्म-मरणादि-जन्य अशौच की स्थिति में भी अशुद्ध नहीं होता है क्योंकि इन अवसरों पर होने वाला यह अशौच, अशौच ही नहीं माना जाता है।

इतयापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः

(आपस्तम्ब-धर्मशास्त्र का दशम अध्याय सम्पूर्ण)

समाप्ता चेयमापस्तम्बस्मृतिः

ॐ तत् सत्।

☆ ☆ ☆

---

१. क-प्रततेषु
ख-विततेषु

परिशिष्ट - १

आपस्तम्बस्मृत्युक्त शुद्धि-व्रत-प्रायश्चित्त-स्वरूप

आचमन

समस्त कर्मों तथा सामान्य अशुद्धि की स्थिति में पवित्र होने का सामान्य उपाय आचमन है। धर्मशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार गोकर्ण की आकृति वाले दाहिने हाथ के विहित (ब्रह्म-देव-प्रजापति) तीर्थ से माषमात्र जल का पान करना आचमन कहलाता है-

गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत।
आचमनञ्च तत् प्रोक्तं सर्वकर्मसु पावनम्।।

पितृतीर्थ (अंगूठे तथा तर्जनी के मध्यवर्ती स्थान) को छोड़कर विहित तीर्थ से तीन बार आचमन करके ओष्ठबन्द कर अंगुष्ठ के मूल से दो बार मुख का स्पर्श किया जाता है। इसके बाद नाक-नेत्र-कान के उभय-छिद्रों, हृदय तथा शिर का जल से स्पर्श करके यह क्रिया सम्पन्न हाती है। आचमन काल में ब्राह्मण हृदय तक, क्षत्रिय कण्ठ तक, वैश्य मुख तक पहुँचे हुए तथा शूद्र ओष्ठ को स्पर्श किये हुए जल से शुद्ध होता है। आचमन प्रायः ठण्डे और फेन-रहित जल से एकान्त में पूर्व या उत्तर मुख बैठकर किया जाता है। यह आचमन स्मार्त और श्रौत भेद से द्विविध कहा गया है जिसे यथोक्त रूप में किसी भी नित्य-कर्म-पूजा- प्रकाशक प्रणयन में देखा जा सकता है।

कृच्छ्र

कृच्छ्र एक महत्त्वपूर्ण सामान्य शब्द है जो प्रायः अनेक प्रायश्चित्तों के लिए सामान्यतः प्रयुक्त होने के कारण मानों प्रायश्चित्त शब्द का पर्याय ही बन गया है। कोश की दृष्टि में इसके विविध अर्थों में कष्ट, प्रायश्चित्त, घोर तप आदि

के समन्वित अर्थ में इसे प्रयुक्त स्वीकार करके सामान्य प्रायश्चित्त के रूप में कृच्छ्र को जाना जाता है। बहुत से आचार्यों ने इसे ही प्राजापत्य मानकर निर्देश किया है कि जहाँ किसी विशिष्ट कृच्छ्र का नामाल्लेख न हो उसे प्राजापत्य समझना चाहिए। सामविधान ब्राह्मण (१.२.१) में जिन तीन कृच्छ्रों की व्याख्या की गयी है तथा आपस्तम्ब स्मृति १.१३-१४ में जिस कृच्छ्र का स्वरूप प्रोक्त है वह मनुस्मृति आदि में प्रोक्त प्राजापत्य-कृच्छ्र ही है। आपस्तम्ब स्मृति में इसी प्राजापत्य के अंश-विभागों द्वारा पाद-कृच्छ्र, अर्द्धकृच्छ्र तथा पादोन कृच्छ्र का स्वरूप भी स्पष्ट कर दिया गया है। पादकृच्छ्र तथा पादोन कृच्छ्र आगे विवेचित हैं। सम्प्रति यहाँ पर अर्द्धकृच्छ्र का स्वरूप बताया जा रहा है-

आपस्तम्ब स्मृति के अनुसार यह छह दिनों का प्रायश्चित्त है जिसमें एक दिन केवल एक बार, एक दिन केवल सन्ध्याकाल, दो दिन बिना माँगे भोजन करना पड़ता है और दो दिनों तक पूर्ण उपवास करना होता है-

सायं प्रातस्तथैवेकं दिनद्वयमयाचितम्।
दिनद्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्रार्धं तद्विधीयते।।[१]

अर्द्धकृच्छ्र के अतिरिक्त विविध रूपों में कृच्छ्र व्रत को परिभाषित किया गया है। वस्तुतः समस्त प्रायश्चित्त कोई न कोई कृच्छ्र ही है। अतः पादकृच्छ्र, पादोनकृच्छ्र, प्राजापत्यकृच्छ्र के साथ-साथ अतिकृच्छ्र, कृच्छ्रातिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र आदि इसके विविध रूप हैं जिनमें आपस्तम्बस्मृति-गत पादकृच्छ्र, पादोनकृच्छ्र, प्राजापत्यकृच्छ्र, पराककृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, सान्तपनकृच्छ्र आदि अनेक कृच्छ्रों का स्वरूप प्रस्तुत परिशिष्ट में यथास्थान संक्षेपेण द्रष्टव्य है।

गोव्रत

गोव्रत के विषय में प्रायश्चित्त प्रकरण ने मार्कण्डेय पुराण को इस प्रकार उद्धृत किया है-"गोमूत्र में स्नान करना, गोबर ही खाकर रहना, गौओं के बीच खड़ा रहना, गोबर पर ही बैठना, जब गौएँ जल पी लें तभी जल पीना, जब तक वे खा न लें तब तक न खाना, जब वे खड़ी हों तो खड़ा हो जाना, जब वे बैठें तो बैठ जाना आदि का एक मास पालन गोव्रत है।[२]

---

१. आपस्तम्बस्मृति ९.४३-४४

२. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० १०८६

चान्द्रायण-व्रत

चन्द्रमा के बढ़ने या घटने के अनुरूप ही जिसमें भोजन किया जाय उस व्रत को चान्द्रायण व्रत कहते हैं-

चन्द्रस्यायनमिवायनं चरणं यस्मिन् कर्मणि ह्रासवृद्धिभ्यां तच्चान्द्रायणम्[१]।

मनुस्मृति के अनुसार रुद्र, सूर्य, वसु, वायु तथा महर्षियों ने समस्त पापों के नाश के लिए चान्द्रायण व्रत को किया था।[२] यह व्रत प्रायश्चित्त के साथ-साथ धर्म-सञ्चय करने के लिए भी किया जाता है।[३] धर्मशास्त्र में इसके यवमध्य, पिपीलिकामध्य, यतिचान्द्रायण, सर्वतोन्मुखी एवं शिशु-चान्द्रायण सञ्ज्ञक पाँच भेद प्रोक्त हैं। कुछ आचार्यों ने इसके मुख्य एवं गौण दो वर्ग करके मुख्य वर्ग में यवमध्य तथा पिपीलिकामध्य का ग्रहण किया है। आपस्तम्ब स्मृतिय में सर्वत्र चान्द्रायण के नाम से ही प्रोक्त इस कृत्य के भेदों का सङ्केत नहीं है। अतः यवमध्य तथा पिपीलिकामध्य के स्वरूप से ही इसके मुख्य रूप को समझा जा सकता है। यवमध्य चान्द्रायण व्रत में मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन एक ग्रास या पिण्ड (कौर) भोजन किया जाता है, दूितीया तिथि को दो ग्रास, तृतीया तिथि को तीन ग्रास..... और इसी प्रकार उत्तरोत्तर एक गास अधिक लेते हुए पूर्णिमा के दिन १५ ग्रास खाये जाते हैं, इसके पश्चात् कृष्ण पक्ष के प्रथम दिन १४ ग्रास, दूसरे दिन १३ ग्रास.... इस प्रकार कृष्ण पक्ष को चतुर्दशी को एक ग्रास खाया जाता है और अमावस्या के दिन पूर्ण उपवास किया जाता है। यहाँ मास के मध्य में ग्रासों की अधिकतम संख्या होती है, अतः इसे **यवमध्य** सञ्ज्ञा सेअभिहित किया जाता है, उस दिन पूर्णमासी होती है (चन्द्र पूर्ण रहता है), इसके पश्चात् चन्द्र छोटा होने लगता है। यहाँ व्रत के बीच में ही पूर्णमासी होती है। यदि कोई कृष्ण पक्ष की प्रथम तिथि को व्रत आरम्भ करता है तो वह एक ग्रास कम कर देता है अर्थात् १४ ग्रास खाता है और इसी प्रकार ग्रासों में कमी करता जाता है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को वह एक ग्रास खाता है और

१. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० १०८४

२. मनुस्मृति ११.२२१

३. अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्।। -याज्ञवल्क्यस्मृति ३.३२६

अमावस्या को एक ग्रास भी नहीं। इसके पश्चात् शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन एक ग्रास लेता है और इस प्रकार बढ़ाता-बढ़ाता पूर्णमासी के दिन १५ ग्रास खाता है। इस दूसरी स्थिति में मास पूर्णिमान्त होता है। इस क्रम में व्रत के मध्य में एक भी ग्रास नहीं होता है और अधिक ग्रासों की संख्या आरम्भ एवं अन्त में होती है। ग्रास के आकार के विषय में कई मत प्रोक्त हैं।[1] गौतम के अनुसार कृच्छ्र प्रायश्चित्त के लिए जो सामान्य लक्षण दिये गये हैं वे चान्द्रायण के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। प्रायश्चित्तकर्ता को पूर्णिमा के एक दिन पूर्व मुण्डन कराना पड़ता है और उपवास करना होता है। वह तर्पण करता है, घृताहुतियाँ देता है, यज्ञिय भोजन को प्रतिष्ठापित करता है और 'आप्यायस्व' (ऋ० १।९१।१७) एवं सन् ते पयांसि' (ऋ० १।९१।१८) का पाठ करता है। उसे वाज० सं० (२०।१४) या तै० ब्रा० (२।६।६।१) में दिये हुए 'यद् देवा देवहेळनम्' से आरम्भ होनेवाली चार ऋचाओं के पाठ के साथ घृताहुतियाँ देनी होती हैं। इस प्रकार इन चारों के साथ कुल मिलाकर सात घृताहुतियां दी जाती हैं। घृताहुतियों के अन्त में 'देवकृत्य' (वाज० सं० ८।१३) से आरम्भ होने वाले आठ मन्त्रों के साथ समिधा की आहुतियां दी जाती हैं। घृताहुतियों के अन्त में 'देवकृतस्य' (वाज० सं० ८।१३) से आरम्भ होने वाले आठ मन्त्रों के साथ समिधा की आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रत्येक ग्रास के साथ मन में निम्न शब्दों में से एक का पाठ किया जाता है–ओं भूः, भुवः, स्वः तपः, सत्यं, यशः, श्रीः (समृद्धि), ऊर्जु, इडा, ओजः, तेजः, वर्चः, पुरुषः, धर्मः, शिवः, या सभी शब्दों का पाठ नमः स्वाहा कहकर किया जाता है। याज्ञिक भोजन निम्न में कोई एक होता है; चावल (भात), भिक्षा से प्राप्त भोजन, पीसा हुआ जो, भूसारहित अन्न, यावक (जौ की लपसी), दूध, दही, घृत, मूल, फल एवं जल।[2] चतुर्विंशतिमत के अनुसार चान्द्रायण-व्रत का प्रत्याम्नाय (प्रतिनिधि-कृत्य) आठ गायों का दान है।

तप्तकृच्छ्र

आचार्यों ने तप्तकृच्छ्र को १२ दिनों का माना है और तीन-तीन दिनों की

---

१. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० १०८४-८५

२. तदेव पृ० १०८६, मनुस्मृति ११.२२२

चार अवधियां निर्धारित की हैं। इसमें तीन अवधियों के अन्तर्गत एक अवधि में गर्म जल, दूसरी में गर्म दूध एवं तीसरी में गर्म घी पिया जाता है और आगे तीन दिनों तक पूर्ण उपवास रखकर मात्र गर्म वायु का पान मात्र किया जाता है।[1] मनु ने इतना और ज़ोड़ दिया है कि इसमें तीन बार के स्थान पर (जैसा कि कुछ प्रायश्चित्तों में किया जाता है) केवल एक बार स्नान होता है और इन्द्रिय-निग्रह किया जाता है। याज्ञ० (३।३१७=देव० ८४) ने इसे केवल चार दिनों का माना है, जिसमें प्रथम तीन दिनों में क्रम से गर्म दूध, घी एवं गर्म जल पिया जाता है और चौथे दिन पूर्ण उपवास किया जाता है।

मनुस्मृति-गत एक प्रक्षिप्त अंश के अनुसार इसमें ६ पल गर्म जल, ३ पल गर्म दूध और १ पल गर्म घी पीना चाहिए। आचार्य पराशर ने भी इसे इसी रूप में प्रस्तुत किया है-

षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत्।
पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते।।[2]

प्रायश्चित्त प्रकाश में २१ दिनों के तप्तकृच्छ्र का भी उल्लेख है। परन्तु वह वस्तुतः महातप्त कृच्छ्र है। बड़े-बड़े पापों को नष्ट करने वाले द्वादश दिवसीय तप्तकृच्छ्र में इन ऊष्ण पेयों के विषय में ब्रह्मपुराण का मत है कि जल, दूध एवं घी क्रम से सन्ध्या, प्रातः एवं मध्याह्न में ग्रहण करना चाहिए। चतुर्विंशतिमत के अनुसार तप्तकृच्छ्र का प्रत्याम्नाय (प्रतिनिधि) तीन गायों का दान है।

पञ्चगव्य-सेवन

कायशोधन के सर्व-सम्मत उपक्रम के रूप में पञ्चगव्य सेवन का शास्त्रीय विधान प्राप्त होता है। पञ्चगव्य गो-जन्य पाँच पदार्थों का नाम है। इसमें गोमूत्र, गोबर तथा गाय के दूध-दही एवं घी का ग्रहण किया जाता है। पराशरस्मृति के अनुसार इन पदार्थों के नाम तथा मात्रा इस प्रकार है-

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यञ्च पवित्रं कायशोधनम्।।

---

१. तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्।
प्रति त्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः।। -मनुस्मृति ११.२१४

२. पराशर स्मृति ४.८

मूत्रस्यैकपलं दद्यात् तदर्धं गोमयं स्मृतम्।
आज्यस्यैकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम्।।[१]

अतः पञ्चगव्य में एक पल मूत्र, अर्द्ध पल गोबर, सात पल दूध, तीन पल दधि, एक पल पिघला घी तथा एक पल कुशोदक होता है। कुछ आचार्यों ने शूद्र के लिए पञ्चगव्य का सेवन निषिद्ध बताकर इसे नरक में पहुँचाने वाला बताया है परन्तु देवल-पराशर जैसे आचार्यों ने शूद्रों को बिना वैदिक मन्त्रों के पञ्चगव्य ग्रहण की अनुमति दी है। सभी वर्णों की स्त्रियों को, जो कुछ सन्दर्भों में शूद्रवत् मानी गयी हैं, विकल्प से पञ्चगव्य के सेवन की अनुमति है।

पराक-कृच्छ्र

मनुस्मृति के अनुसार सावधान तथा जितेन्द्रिय होकर बारह दिनों तक बिना भोजन किये जप-होम करते रहने का नाम पराक कृच्छ्र है। यह प्रायश्चित्त क्षुद्र, मध्यम तथा महान् पापों का शमन करने वाला है-

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः।।[२]

चतुर्विंशति मत के अनुसार पराक का प्रत्याम्नाय तीन गायों का दान है।

पादकृच्छ्र

यह वह प्रायश्चित्त है जिसमें पापी एक दिन केवल दिन में, दूसरे दिन रात में केवल एक बार एवं आगले दिन या रात में केवल एक बार बिना किसी अन्य व्यक्ति, नौकर या पत्नी से मांगे, भोजन करे तथा इसके अगले दिन पूर्ण उपवास करे। इस प्रकार यह चार दिनों का व्रत है।[३] किन्तु ग्रासों की संख्या के विषय में मतभेद है। आपस्तम्ब के मत से ग्रास २२, २६ एवं २४ होने चाहिए पराशर ने इसी प्रकार १२, १५ या १४ ग्रासों की संख्या स्वीकार की है

---

१. तदेव ११.३४-३५
२. मनुस्मृति ११.२१५
३. याज्ञवल्क्यस्मृति ३.३१८

जबकिचतुर्विंशतिमत ने क्रमशः १२, १५ एवं १० ग्रासों की संख्या घोषित की है।[१]

पादोनकृच्छ्र

पादोन कृच्छ्र का स्वरूप प्राजापत्य-कृच्छ्र की तरह ही है किन्तु यह ९ दिनों का होता है न कि प्राजापत्य की भांति १२ दिनों का। इसमें तीन दिनों तक केवल दिन में खाया जाता है, तीन दिनों तक बिना माँगे खाया जाता है और तीन दिनों तक पूर्ण उपवास रहता है (यहाँ इन तीन दिनों में केवल रात्रि वाले भोजन का आदेश छोड़ दिया गया है)। स्वयं आपस्तम्ब ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है–

त्र्यहं निरशनात् पादः पादश्चायाचितं त्र्यहम्।
पादः सायं त्र्यहं पादः प्रातर्भोज्यं तथा त्र्यहम्।।
प्रातः सायं दिनार्द्धञ्च पादोनं सांध्यवर्जितम्।।[२]

प्राजापत्य-कृच्छ्र

धर्मशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार जब कृच्छ्र का कोई विशेषण न हो तो उसे प्राजापत्य समझना चाहिए। प्राजापत्य-कृच्छ्र बहुविध हैं जिनमें एक का वर्णन करते हुए मनु का मत है–

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः।[३]

अर्थात् प्राजापत्य में तीन-तीन दिनों की चार अविधियाँ होती हैं, जिनमें क्रम से केवल दिन में एक बार, पुनः केवल रात्रि में एक बार, पुनः तीन दिनों तक बिना माँगे खाना एवं फिर पूर्ण उपवास किया जाता है। अर्थात् प्रथम तीन दिनों में केवल एक बार दिन में, दूसरे तीन दिनों में केवल रात्रि में, तीसरे तीन दिनों में बिना माँगे और चौथे तीन दिनों में पूर्ण उपवास। दूसरे प्रकार का वर्णन

---

१. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० १०८९
२. आपस्तम्बस्मृति १.१३-१४
३. मनुस्मृति ११.२११

वसिष्ठ (२३।४३) ने किया है-पहले दिन केवल दिन में, दूसरे दिन केवल रात में, तीसरे दिन केवल बिना माँगे खाया जाता है और चौथे दिन पूर्ण उपवास होता है, यही क्रिया पुनः चार-चार दिनों की दो अवधियों में की जाती है। पहले प्राजापत्य प्रकार को 'स्थानविवृद्धि' एवं दूसरे को 'दण्डकलित' कहा गया है। इन दोनों को 'आनुलोम्येन' (उचित एवं सीधे क्रम से बने) कहा गया है। यदि उपर्युक्त क्रम उलट दिया जाय, यथा-प्रथम तीन दिनों तक पूर्ण उपवास हो, पुनः तीन दिनों तक बिना माँगे खाया जाय, तीन दिनों तक केवल रात्रि में खाया जाय और आगले तीन दिनों तक केवल दिन में खाया जाय, तो उसे 'प्रातिलोम्येन' कहा जायगा। चतुर्विंशति मत के अनुसार प्राजापत्य का प्रत्याम्नाय एक गाय का दान है।

वज्र-व्रत

कुछ आचार्यों के मत में वज्र वह प्रायश्चित्त है जिसके द्वारा महापातकी तीन वर्षों में शुद्ध हो जाता है। जब घी में भुने हुए जौ गोमूत्र में मिलाकर सेवन किये जाते हैं तो उसे वज्र व्रत की सञ्ज्ञा से अभिहित किया जाता है। आपस्तम्ब-स्मृति में भी वज्र को इसी रूप में निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है-

गोमूत्रेण तु सम्मिश्रं यावकं भक्षयेद् द्विजः।
एतद्विमिश्रित वज्रमुक्तश्चोशनसां स्वयम्।।[1]

प्रस्तुत श्लोक के एक पाठ में उक्तश्चोशनसा के स्थल पर भुक्तश्चोशनसा पाठ भी मिलता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वज्र का सेवन शुक्राचार्य द्वारा पापमुक्ति-हेतु किया गया था।

सान्तपन कृच्छ्र

प्रस्तुत कृच्छ्र सान्तपन महासान्तपन तथा अति सान्तपन आदि भेदों से पाँच प्रकार का प्रतीत होता है। धर्मशास्त्र के इतिहास में प्रोक्त मत के अनुसार सान्तपन दो दिनों तक चलता है[2] जिसमें प्रथम दिन गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि,

---

१. आपस्तम्बस्मृति १.२९
२. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० १०९२

घृत तथा कुशोदक अर्थात् पञ्चगव्य लिया जाता है तथा दूसरे दिन पूर्ण उपवास किया जाता है। महासान्तपन-कृच्छ्र सात दिनों का होता है जिसमें उपर्युक्त छहों पदार्थों का सेवन क्रमशः एक-एक दिन करते हुए सातवें दिन उपवास किया जाता है। आपस्तम्ब-स्मृति में सम्भवतः यही महासान्तपन ही सान्तपन के नाम से विहित है क्योंकि यदि एक दिन पञ्चगव्य-सेवन तथा दूसरे दिन उपवास का विधान होता तो अन्य स्थलों की भाँति वहाँ भी उसे सान्तपन न कहकर पञ्चगव्य सेवन तथा उपवास से निर्दिष्ट कर दिया गया होता। मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक में दोनों ही प्रकार की व्याख्या का सन्निवेश देखा जा सकता है–

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्।।[१]

सान्तपन तथा महासान्तपन के अतिरिक्त इसका एक भेद अतिसान्तपन है जो ११ दिनों तक चलता है। चतुर्थ सान्तपन कृच्छ्र १५ दिनों का तथा पाँचवाँ २१ दिनों का होता है। सान्तपन का प्रत्याम्नाय (प्रतिनिधि) दो गायों का दान विहित किया गया है।



१. मनुस्मृति ११.२१२

परिशिष्ट - २

आपस्तम्बस्मृत्युक्त शुद्धि एवं प्रायश्चित्त-सन्दर्भ



परिशिष्ट-३

आपस्तम्बस्मृतिगत-श्लोकाऽनुक्रमणी

ज्ञानभारती पब्लिकेशन

दिल्ली-110007